अंक : १०३

जुलाई-सितंबर २००८

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

आमने-सामने
डॉ. शिव ओम अंबर

सागर - सीपी
डॉ. शंभुनाथ आचार्य

१५ रुपये

जुलाई-सितंबर २००८
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
जयप्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
हम्माद अहमद खान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

• सदस्यता शुल्क •
आजीवन : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.,
वार्षिक : ५० रु.,
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
विदेश में (समुद्री डाक से)
वार्षिक : १५ डॉलर या १२ पौंड
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनी ऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल ''कथाबिंब'' के नाम ही भेजें.

• रचनाएं व शुल्क भेजने का पता •
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई- ४०० ०८८
फोन : २५५१५५४१, ९८१९१६२६४८
e-mail:kathabimb@yahoo.com
(कृपया रचनाएं भेजने के लिए ई-मेल का प्रयोग न करें.)
प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक :
सुभाष गिरी
फोन : ९३२४०४७३४०

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां
॥ ७ ॥ कोढ़ फूटेगा / **नूर मुहम्मद 'नूर'**
॥ ११ ॥ राग-जीवन / **देवेंद्र सिंह**
॥ १६ ॥ हेलिकॉप्टर / **राजीव सिंह**
॥ २२ ॥ कस्तूरी / **गजेंद्र रावत**
॥ २५ ॥ कीड़े / **वल्लूर शिवप्रसाद**

लघुकथाएं
॥ १५ ॥ सच के विरुद्ध / **डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम'**
॥ ३१ ॥ कफ़न की तैयारी / **ज्ञानदेव मुकेश**
॥ ४१ ॥ सुदामा की ग़रीबी / **रामकुमार आत्रेय**

कविताएं/दोहे/ग़ज़लें
॥ ४७ ॥ यह जो ज़िंदगी है / **डॉ. वरुण कुमार तिवारी**
॥ ४७ ॥ समान धरातल पर / **डॉ. प्रभा मुजुमदार**
॥ ४८ ॥ दोहे / **चंद्रसेन विराट, प्रमोद भट्ट 'नीलांचल', जय चक्रवर्ती**
॥ ४९ ॥ गजलें / **साहिल, डॉ. शंभुनाथ आचार्य, सच्चिदानंद 'इंसान', सुरेंद्र वर्मा**

स्तंभ
॥ २ ॥ 'कुछ कही, कुछ अनकही'
॥ ४ ॥ लेटरबॉक्स
॥ ३२ ॥ 'आमने-सामने' / **डॉ. शिवओम 'अंबर'**
॥ ३६ ॥ 'सागर-सीपी' / **डॉ. शंभुनाथ आचार्य**
॥ ४० ॥ 'वातायन' / **डॉ. कुमार केतकर**
॥ ४२ ॥ 'बाइस्कोप' / **सविता बजाज**
॥ ४३ ॥ पुस्तक-समीक्षाएं
॥ ५० ॥ परिशिष्ट

आवरण चित्र : डॉ. अरविंद

'कथाबिंब' मुंबई की 'संस्कृति संरक्षण संस्था' के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

यह, वर्ष २००८ का तीसरा अंक है और इस वर्ष प्रकाशित चौथा अंक ! हमारी बराबर कोशिश रहती है कि पत्रिका समय पर प्रकाशित हो, तिमाही ख़तम होने से पहले ही अंक रिलीज़ हो जाये किंतु कतिपय कारणों से ऐसा नहीं हो पाता. वर्तमान परिस्थितियों को देखते–समझते हुए लगता है कि प्रकाशन में चला आ रहा विलंब शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा. पाठकों को विदित ही है कि प्रकाशित कहानियों में से, प्रति वर्ष अभिमतों के आधार पर पांच कहानियां *"कमलेश्वर–स्मृति कथा पुरस्कार"* के लिए चुनी जाती हैं. यदि आप पुरस्कार हेतु अभिमत भेजना चाहते हैं और किसी कारणवश आपके पास कोई अमुक अंक नहीं है तो कृपया हमें लिखें. इस आयोजन की सफलता के लिए ज़रूरी है कि अधिक से अधिक संख्या में पाठक अपने अभिमत हमें भेजें. अगले अंक में अभिमत पत्र प्रकाशित होगा.

भाई राजेंद्र पांडे के निधन के सदमे से अभी हम उबर भी नहीं सके थे कि एक और वज्रपात हुआ. हमारे लंबे समय के सहयोगी श्री प्रबोध कुमार गोविल की पत्नी डॉ. रेखा गोविल का १० सितंबर को देहांत हो गया. वे जयपुर विश्वविद्यालय के एक कार्यक्रम में हंसती–मुस्कराती संभाषण कर रही थीं कि अचानक गिर पड़ीं. ऐसा क्यों हुआ यह भी नहीं मालूम पड़ा, क्योंकि उन्हें कोई बीमारी नहीं थी. रेखा गोविल भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई में काम करती थीं. वहीं मेरी उनसे पहचान हुई. भाई प्रबोध से परिचय रेखा जी के माध्यम से ही हुआ. *"कथाबिंब"* के लगभग प्रारंभ से ही प्रबोध पत्रिका से जुड़े. दोनों से हम दोनों के बहुत ही घनिष्ठ पारिवारिक संबंध रहे हैं. डॉ. रेखा ने न्यूक्लीय भौतिकी में पी–एच. डी. की थी किंतु कंप्यूटर में हिंदी के प्रयोग को लेकर भी बहुत सारा काम किया. सरकारी संस्था सी–डेक के साथ भी उनका प्रोजेक्ट चल रहा था. पिछले साल १३ अक्तूबर को *"संस्कृति संरक्षण संस्था"* द्वारा आयोजित, *"कंप्यूटर के विविध उपयोग और हिंदी"* विषय पर आयोजित एक संगोष्ठी में वक्ता के रूप में रेखा आमंत्रित थीं. किंतु किन्हीं कारणों से नहीं आ पायीं और अब यह इंतज़ार अंतहीन हो गया है. एक बहुत ही निष्ठावान और कर्मठ व्यक्ति हमारे बीच नहीं है. हमारी हार्दिक श्रद्धांजलि !

पिछले कुछ वर्षों से "कथाबिंब" के प्रकाशन में हमें *"संस्कृति संरक्षण संस्था"* सहयोग करने लगी है. अभी हाल ही में, १७ अगस्त ०८ को संस्था ने एक *ऑन–द–स्पॉट* "काव्य–सृजन" प्रतियोगिता का आयोजन किया. कुछ पुरस्कृत रचनाओं को परिशिष्ट के रूप में इस अंक में प्रकाशित किया जा रहा है.

●

अब कुछ इस अंक की कहानियों पर – पहली कहानी *"कोढ़ फूटेगा"* में नूर मुहम्मद नूर ने हर रचनाकार की विडंबना को उजागर किया है कि किस–किस तरह की पारिवारिक समस्याओं से एक साहित्यकर्मी को जूझना पड़ता है. क्योंकि दैनिक ज़रूरतें मात्र लेखनकर्म से पूरी नहीं हो सकतीं. कहानी में आंचलिकता के प्रयोग से एक अलग आयाम उत्पन्न हो गया है. अगली कहानी *"राग–जीवन"* में देवेंद्र सिंह जी एक वृद्ध दंपत्ति के एकाकीपन के अनुभवों को लेकर उपस्थित हैं. हर पल जैसे जीवन रीतने का अहसास ! आज चुनाव प्रचार पूरी तरह हाई–टेक हो गया है, अपनी कहानी *"हेलीकॉप्टर"* में राजीव सिंह रेखांकित कर रहे हैं कि सच्चे–झूठे हथकंडों से किस प्रकार चुनावी रैलियों में भीड़ जुटायी जाती है और जनता को आश्वासनों की घुटी पिलायी जाती है. *"कस्तूरी"* कहानी में गजेंद्र रावत का इंगित महानगरों के तेज़ी से बदलते माहौल की ओर है. पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में ढलते हुए हमारे शहर पूरी तरह असंवेदी हो गये हैं. अगली कहानी *"कीड़े"* तेलुगु लेखक श्री वल्लूरु शिवप्रसाद की कहानी *"पुरुगु"* का अनुवाद है. जिसमें आज की ज्वलंत समस्या को उठाया गया है कि दलाल और व्यापारी किस तरह कृषकों का शोषण करते हैं और कृषक एक शिकंजे में फंस जाता है.

●

एक ताज़ा रपट के अनुसार भारतवर्ष भ्रष्टाचार के पैमाने पर १३ पादान नीचे पहुंच गया है. पहले हम ७२वें स्थान पर थे किंतु अब ८५वें स्थान पर हैं. यह दर्शाता है कि एक वर्ष में हमने कितनी *"प्रगति"* की है. चुनाव के समय हर दल प्रचार करते–करते नहीं थकता कि ग़रीबी और भ्रष्टाचार का पूरी तरह उन्मूलन कर देगा. सरकारें बदल जाती हैं लेकिन होता इसका उल्टा ही. हाल ही में, उत्तर प्रदेश की एक स्वयंसेवी संस्था ने एक सरकारी कार्यालय के आगे सूची फलक लगा दिया कि इस कार्यालय में किस कार्य के लिए कितना घूस देना पड़ता है. पैसे लो और काम करो, कम से कम व्यर्थ चक्कर लगाने में लोगों का समय तो ख़राब न हो ! सूची फलक को उतरवाने के लिए पुलिस को बुलाना पड़ा.

किसी राजनीतिक दल के चुने हुए नेता दूसरे दल में न जायें इसलिए दलबदल क़ानून में संशोधन किया गया. १० को ३३ प्र. श. किया गया ताकि दलबदल करना कठिन हो जाये. लेकिन इसका भी तोड़ निकाल लिया गया. मंत्रीपद न मिलने के कारण असंतुष्टों को नये–नये आयोगों और निगमों का अध्यक्ष बनाकर मंत्रियों के समकक्ष सुविधाएं उपलब्ध करायी जाने लगीं. मंत्री पद न सही, अध्यक्ष पद ही सही.

किसी भी चुनाव की घोषणा के साथ ही आचार संहिता लागू हो जाती है और कोई भी छोटा–बड़ा नया काम शुरू नहीं किया जा सकता ताकि मतदाताओं का वोट प्रभावित न हो. यहां तक कि २००४ के आम चुनावों में स्वर्णिम चतुर्भुज सड़क योजना पर लगे होर्डिंग्स पर प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के चित्रों को चुनाव आयोग ने ढकवाया था. लेकिन लोकसभा में, सरकार द्वारा विश्वास मत प्राप्त करते

समय किसी प्रकार की आचारसंहिता की आवश्यकता नहीं है. खुले आम कहा गया कि हम आपके समर्थन में वोट देंगे, बदले में हमें मुख्यमंत्री की गद्दी चाहिए, हमें इतने मंत्री पद चाहिए. धर्म के नाम पर भी कहा गया कि मुसलमानों को विश्वासमत का विरोध करना चाहिए. किसी भी सांसद पर कोई मुकदमा नहीं किया गया. झारखंड में भी थोड़ी न नुकर के साथ शिब्बू सोरन मुख्यमंत्री बन गये. इन्हीं गुरू जी के कारण नरसिंह्मा राव की सरकार बची थी और अब यही मनमोहन सिंह के संकटमोचन बने. पदों का लालच दे कर, धर्म की दुहाई देकर या सांसदों की ख़रीद-फरोख़्त करके किसी तरह सरकार बचा लेना दिन-दहाड़े भ्रष्टाचार का नमूना है. फिर अगर देश का शीर्ष ही ऐसा करता है तो आम जनता क्यों नहीं ऐसा करे. जब आप बबूल का पेड़ बोयेंगे तो आम के फल आने से रहे. १०० करोड़ से अधिक आबादी वाले भारत देश में, हाल में चीन में संपन्न ओलंपिक खेलों में मिले दो पदकों का ढोल पीटा गया. चीन में सोनिया गांधी और उनके परिवार की उपस्थिति से भी कोई खास अंतर नहीं पड़ा. कहीं किसी ने यह शर्म महसूस नहीं की कि इतना विशाल और महान देश और मात्र दो पदक ! अगले ओलंपिक के लिए अभी से हमारी क्या तैय्यारी है ? क्या किसी बजट की घोषणा की गयी है ? या फिरसे हमेशा की तरह क्षेत्रीयता के आधार पर टीमें चुनी जायेंगी और हम अपना सा मुंह लेकर वापस आ जायेंगे. खेलों में, चयन में भ्रष्टाचार से हमें कब मुक्ति मिलेगी ?

देश के इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की प्राथमिकताओं के बारे में भी कुछ समझ में नहीं आता. *"गुड़िया किसकी ?" "गड्ढे में गिरा प्रिंस," "नठारी कांड"* और अब *"आरुषि हत्याकांड."* देश में एक महीने से अधिक आरुषि हत्याकांड से ज़्यादा महत्वपूर्ण कुछ घटा ही नहीं ! सभी चैनल वाले लगातार पल-पल की ख़बर देने को तत्पर और पुलिस और सी. बी. आई. को कोई ख़बर ही नहीं ! बात-बात पर एसएमएस भेजने की गुहार. चैनलों के लिए हर घटना या दुर्घटना एक रियल्टी-शो बन जाती है. कमाई का एक ज़रिया. चाहे कोई मरे या जिये - राम सेतु का विवाद हो, गुर्जर आंदोलन या अमरनाथ श्राइन बोर्ड की ज़मीन का मामला हो, या मुंबई, वाराणसी, लखनऊ, जयपुर, हैदराबाद, बैंगलोर, अहमदाबाद, दिल्ली की बम विस्फोट की घटनाएं ; १०-१०, २०-२० सेकंडों की क्लिपिंग्स, चौबीसों घंटे बार-बार दिखाकर आप कौन-सा दायित्व निभा रहे हैं ? चाहे बाढ़ हो सूखा, सिर्फ जिससे टी. आर. पी. बढ़े वही ब्रेकिंग न्यूज़ !

इधर पिछले दो-तीन सालों में बम विस्फोटों की घटनाओं की बारंबारता - फ्रीक्वेंसी में अतुलनीय वृद्धि हुई है. आतंकवाद का एक नया चेहरा सामने आया है. हर ऐसी घटना से पहले, ताल ठोक कर ई-मेल द्वारा मीडिया चैनलों को ख़बर की जाती है कि इस शहर में विस्फोट होने वाले हैं, रोक सको तो रोक लो ! मगर देश का गृहमंत्री हर घटना के बाद गीदड़ भभकी देता है कि अगली बार हम पूरी सतर्कता बरतेंगे, फिर करके दिखाओ. इस बार दिल्ली में हुए बम विस्फोटों के बाद गृहमंत्री का कहना कि जानकारी तो थी लेकिन स्थान और समय के बारे में पक्के तौर पर नहीं मालूम था, सारी सीमाओं को लांघ गया. हर बार मीडिया और सरकार की प्रतिक्रिया एक नपे-तुले पैटर्न पर सामने आती है - अभी तक किसी संघठन ने इसकी ज़िम्मेदारी नहीं ली है, मृतकों की संख्या की पुष्टि नहीं हो पायी है, अस्पतालों में घायल पहुंच रहे हैं किंतु इलाज ठीक नहीं हो पा रहा, आवश्यक दवाइयां उपलब्ध नहीं हैं. सरकार की ओर से तुरत-फुरत मरने वालों के परिजनों और घायलों को मुआवजे देने की घोषणा. अस्पतालों में स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर के नेताओं की आवाजाही. दूसरे दिन कैमरा उन्हीं स्थानों को फिरसे यह कह कर दिखाता है कि सब सामान्य हो गया है. लोगों ने बड़ी हिम्मत दिखायी है, सब काम पर जाने लगे हैं. इसके बाद पैकअप और अगली घटना का इंतजार.

प्रश्न यह उठता है कि ऐसे में क्या किया जाये ? लोकल ट्रेनों में से सामान रखने की रैक हटाना, जगह-जगह सी.सी.टी. कैमरे लगाना, कूड़ेदानों को पारदर्शी बनाना, या साइकिलों के लिए लाइसेंस देने से कुछ नहीं होने वाला. चाहे १५ अगस्त, २६ जनवरी, गणपति हो, रमज़ान, नवरात्रि, दीवाली हो पुलिस वालों की जान पर बन आती है. पहली बात तो यह कि महज क़ानून और व्यवस्था की समस्या समझ कर इसका निदान नहीं हो सकता. आज इस आतंकवाद में जो संलिप्त हैं वे समाज के भटके हुए लोग नहीं हैं. उनमें से अधिकांश पढ़े-लिखे नौकरीपेशा लोग हैं, कंप्यूटर से लेकर हर तरह की आधुनिक जानकारी उन्हें है. कई बार तो परिवार वालों को भी पता नहीं होता कि पति या पुत्र सालों कहां, क्या करता रहा ? देश के विभाजन के बाद से ही एक अघोषित युद्ध लड़ा जा रहा है. हमने जो रक्तरंजित आज़ादी पायी यह सब उसी का परिणाम है. बाद में बंगलादेश का बनना भी इन शक्तियों को कभी भी रास नहीं आया. एक पक्ष का यह मानना है कि हमें देश को निरंतर खोखला बनाना है. कुछ लोग समझते हैं कि बाबरी मस्जिद ढहने और गुजरात के दंगे के कारण आतंकवाद बढ़ा है. ऐसा सोचना महज एक छलावा है. मुसलमानों के बीच से सही सोच उभर कर सामने आनी चाहिए. अमन पसंद मुसलमानों की स्थिति खलिस्तान आंदोलन के समय सिक्खों जैसी हो गयी है. आम नागरिक हर मुसलमान को संदिग्ध समझ रहा है. ऐसे में आश्चर्य नहीं होगा कि मुसलमानों का कहीं बड़े पैमाने पर सामाजिक बहिष्कार न होने लगे. जमायत-उल-उलेमाए हिंद ने आतंकवाद के खिलाफ रैली करके पहल की है. दारुल उलूम, देवबंद ने भी फतवा जारी किया है. इसके साथ ही मुसलमानों को विभाजन के कारण बने अलग-अलग देशों की सीमाओं को भी स्वीकारना होगा. आज़ादी के समय यह नहीं पता था कि नया देश कैसा होगा. आज ६० सालों के बाद, मिल-बैठकर फिरसे तय किया जाये कि जो कुछ लोग असंतुष्ट हैं तो वे बिना ख़ून-ख़राबे के देश छोड़ कर जा सकते हैं. कोई भी धर्म या मज़हब देश से बड़ा नहीं होता. भारत में रह कर देश के संविधान को न मानने वालों के साथ देशद्रोहियों जैसा व्यवहार करके ही आतंकवाद से मुक्ति पायी जा सकती है. अब कोई भी आसान विकल्प शेष नहीं रह गया है.

लेटर बॉक्स

❊ ''कथाबिंब'' के दो अंक जन-मार्च ०८ व अप्रैल-जून ०८ देखे. बहुत अरसे के बाद 'कथाबिंब' पढ़ने को मिली. इंदौर में १०-१५ साल पहले नियमित पढ़ता था. फिर एक लंबा अंतराल आ गया. आज भी ''कथाबिंब'' पहले की तरह धारदार है. बल्कि अब ज़्यादा निखार आ गया है. विशेषकर इन दोनों अंकों की लघुकथाएं पढ़कर मन प्रसन्न हो गया.

यह जानकार और आश्चर्य हुआ कि ''कथाबिंब'' को निकलते हुए ३० साल हो गये. किसी एक विधा को लेकर लगातार ३० वर्षों तक पत्रिका का निरंतर प्रकाशित होना किसी चमत्कार से कम नहीं है. आपकी निष्ठा, श्रम को बार-बार प्रणाम करने का मन करता है.

भारत में जब कहानी का इतिहास लिखा जायेगा तो 'कथाबिंब' के बिना वह अधूरा रहेगा. पत्रिका १०० साल पूरी करे, मेरी मंगलकामनाएं.

✣ अनंत श्रीमाली, सहा.निदेशक,
भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग, केंद्रीय सदन,
सी विंग, ६ फ्लोर, सेक्टर १०, सीबीडी बेलापुर,
नवी मुंबई-४००६१४

❊ 'कथाबिब' के माध्यम से आप कहानी का एक अनुष्ठान कर रहे हैं. आपका संपादकीय सदैव सुविचारित होता है. इस बार न्यूक्लीय करार को लेकर आपके विचार युक्तायुक्त हैं. माला वर्मा की कहानी 'डॉक्टर की फीस' ग़रीबी के दर्द और ग़रीब की ईमानदारी की कथा है. डॉ. सूर्यराव की 'धुआं-धुआं ज़िंदगी' की कहानी का नायक खेलावन गांव से स्वस्थ शरीर व उज्ज्वल मन लेकर आता है लेकिन शहरी जीवन और कारखाना उसे मृतप्राय बना देता है. जिस स्थिति में वह बच्चों व पत्नी के लिए सौगात ले जा रहा है, वह उसकी अंतिम यात्रा का साजोसामान है. 'आश्रयदाता' में कैलाश जायसवाल ने व्यवस्था के सामने दम तोड़ते आम आदमी की व्यथा बयान की है. डॉ. रंजना जायसवाल की 'क्योंकि मैं एक स्त्री हूं' एक स्त्री के जीवन का हलफ़िया बयान है. जिस पुत्र की प्रतीक्षा में वह स्त्री अपना जीवन गुज़ार देती है वह पिता का अवतार लेकर लौटता है. 'एक कुर्बानी यह भी' डॉ. सेराज खान 'बातिश' की मूल्य परिवर्तन की कहानी है. डॉ. बातिश का आत्मवक्तव्य उनकी संघर्ष गाथा है. निर्भय मल्लिक के साक्षात्कार में सुरेंद्र दीप ने बेबाकी से बात की है और मल्लिक ने भी प्रश्नों के उत्तर निर्भय होकर दिये हैं. सविता बजाज का तगड़ी शिवशंकर पिल्लै संबंधी संस्मरण मार्मिक और सात्विक है.

✣ हितेश व्यास
मारुति कॉलोनी, पंकज होटल के पीछे, नयापुरा,
कोटा (राज.) - ३२४००१

❊ 'कथाबिंब' के अप्रैल-जून ०८ अंक के लिए बहुत धन्यवाद. डॉ. सेराज खान बातिश का आमने-सामने बहुत बेबाक़ लगा. दिल को झकझोर कर रख दिया. शायद जीवन इसी का नाम है. एक कड़वा सच यह भी है कि पिछला जन्म और आज का सच एक दूसरे के पूरक हैं, तभी तो आनेवाला कल आशा और निराशा के पलड़े में झूलता है. अगर ऐसा न हो तो इंसान जीते जी मर जाये. इसीलिए निदा फाज़ली ने फिल्म ''आहिस्ता-आहिस्ता'' जिसमें मैं भी थी, एक गीत लिखा- 'कभी किसी को मुकम्मल जहां नहीं मिलता.' आस टूट-टूटकर बनती है तभी तो लेखक सेराज अपनी अधूरी प्यास हम पाठकों तक पहुंचा पाये.

''आश्रयदाता'' कहानी के लेखक कैलाश जी को मेरी बधाई. आज के समाज के मुंह पर सच का एक करारा चांटा मारा है. लेकिन मेरे ख़्याल से यह कोई हल नहीं, किसी को तो पहल करनी होगी. क्या बुजुर्ग लोगों के जीवन का हल मौत है या मौत का एक तमाशा! इसकी अपेक्षा कम से कम घनश्याम अग्रवाल जी ने लघुकथा ''मुक्ति'' में, बूढ़े को मुक्ति तो मिल गयी इज़्ज़त से. अपने दो लाचार, ग़रीब बेटों के सहारे जिन्होंने कुछ हल तो खोजा.

राजेंद्र पांडे जी के निधन का बहुत दुख है. नाम और दाम कमाने हेतु गवर्नमेंट की लगी लगायी पक्की नौकरी छोड़ लेखक बन गये. पता नहीं उनकी मुराद पूरी हुई या नहीं? ईश्वर से उनकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करती हूं.

✣ सविता बजाज,
पो.बॉ. १९७४३, जयराज नगर,
बोरिवली (प.), मुंबई-४०००९१

❊ इस बार बारिश में भीगते हुए पोस्टमैन ने 'कथाबिंब' जैसे ही लाकर दिया मेरे पापा पहले जुट गये. बहरकैफ़, हमारे हाथ भी आया. बतौर ग़ालिब, ''हाथ आ जाये तो फिर हाथ लगाये न बने, कथाबिंब.'' डॉ. बातिश के बयान में, ''पलट कर मैं हर मोड़ पर देखता हूं, कहां तक हुआ है सफ़र, देखता हूं.'' फूल और कांटे की ऐसी राहगुज़र है, जिससे हर अदीब कभी न कभी गुज़रता है, कामयाबी और नाकामयाबी के दौर से. माला वर्मा की कहानी में इस युग में मृत होती मानवीय संवेदनाओं के कई पायदान परिलक्षित होते हैं. नज़्म और नश्र का यह गुलदस्ता- यह अंक अप्रतिम बन पड़ा है.

✣ प्रमोद भट्ट नीलांचल,
गुलाब कॉलोनी, सागर (म. प्र.) ४७०००२.

❊ पिछले दिनों 'कथाबिंब' के दो अंक हस्तगत हुए. वैसे तो मैं कहानियां पढ़ने में अत्यधिक रुचि रखता था और ''सारिका'' का नियमित पाठक था. आज भी सारिका के १९८४-८७ के कुछ विशेषांक मेरे पास सुरक्षित रखे हैं और यदाकदा उन्हें निकाल कर कुछ कहानियां पढ़ लेता हूं. कई कहानियां तो मैंने १०-१२ बार भी पढ़ी होंगी. जबसे सारिका बंद हुई, शायद मुझे शॉक लगा या क्रोध में ही मैंने कहानियां पढ़ना बंद कर दिया. यद्यपि, कुछ दिनों अन्य पत्रिकाओं में छपी इक्का-दुक्का कहानियां पढ़ लेता था पर संतोष नहीं हो पाता था. मुझे याद नहीं कितने वर्षों से मैंने कोई

अच्छी कहानी कब पढ़ी !

'कथाबिंब' के दोनों अंकों की प्रतियों को उसी अवधारणा के साथ लाकर अख़बार के ढेर के साथ रख दिया. एक दिन घर की साफ़-सफ़ाई करते समय दोनों अंक फिर हाथ लगे. जनवरी-मार्च ०८ अंक को खोला, मंगला रामचंद्रन की कहानी ''सजायाफ्ता'' को यों ही पढ़ने लगा. पहले ही पैरे में कथावस्तु की जानकारी से सिहरन सी हो गयी और एक सांस में पूरी कहानी पढ़ डाली. फिर ''मध्यांतर'' (डॉ. वी. रामशेष) और ''रोशनीवाला'' (राजेंद्र वर्मा) भी पढ़ डालीं. दरअसल एक कहानी ही पढ़कर पत्रिका के स्तर का भान हो गया- 'सारिका'याद आ गयी! यह मेरा दुर्भाग्य है कि पूर्व में मैं 'कथाबिंब' से वंचित रहा. मैं पत्र के साथ आजीवन सदस्यता का चैक भेज रहा हूं.

पी.डी.वाजपेयी,

सी-३४, श्री पंचवटी अपार्टमेंट, जुहू गली,

अंधेरी (प.), मुंबई- ४०००५८.

❊ ''कथाबिंब'' का अप्रैल-जून ०८ अंक मिला. ग़ज़लें बहुत पसंद आयीं. सभी को हार्दिक अभिनंदन. ''कुछ कही, कुछ अनकही'', आपका संपादकीय मेरा पसंदीदा कॉलम है- आपने जिस विषय पर अपने विचार व्यक्त किये हैं उस पर सबको गंभीरता से सोचना चाहिए. सही समय पर सही संपादकीय के लिए साधुवाद. ''बाइस्कोप'' के लिए सविता जी अभिनंदन की अधिकारा हैं. सभी लघुकथाएं भी रोचक हैं. डॉ. दरवेश भारती जी की लघुकथा ''रखवाला'' का अंत हृदय को हिला देता है.

''कथाबिंब'' के साफ़-सुथरे मुद्रण के बारे में क्या कहूं? लगता है आप बहुत कीमती काग़ज़ इस्तेमाल कर रहे हैं!

साहिल,

नीसा, ३/१५, दयानंद नगर, राजकोट (गुज.) ३६०००२

❊ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून ०८ का अंक प्राप्त हुआ. आपका ''कुछ कही, कुछ अनकही'' सामयिक ज्वलंत प्रश्नों के संदर्भ में एक सुलझी हुई सोच को दर्शाता है. वास्तव में हम हर क्षेत्र में ''शॉर्ट-कट'' तलाशते रहते हैं, चाहे आगे चलकर, आगे कुआं, पीछे खाई की स्थिति ही क्यों न हो. हमारे राजनेताओं की छोटी सोच इसके लिए ज़िम्मेदार है, लेकिन वे तो अपनी कुर्सी को पाने/बचाने के खेल में सभी मर्यादाओं की धज्जियां उड़ाने में लगे हैं.

राजेंद्र निशेश,

२६९८, सेक्टर ४० सी, चंडीगढ़- १६००३६

❊ ''कथाबिंब'' के अप्रैल-जून ०८ अंक में श्रीमती सविता बजाज का लिखा संस्मरण पढ़ा जिसमें उन्होंने मलयालम के प्रमुख उपन्यासकार एवं कहानीकार स्व. तकषि शिवशंकर पिल्लै के साथ हुई अपनी भेंट का मार्मिक प्रसंग उभारा है. यह जानकर बहुत अच्छा लगा कि स्व. पिल्लै जी के प्रति लेखिका के मन में कितनी श्रद्धा है.

वैसे केरल के एक गांव का नाम है तकषि जहां स्व. पिल्लै का जन्म हुआ, आमरण वे वहीं रहे. उसी के आस-पास के जनजीवन को आधार बनाकर अपना कथा संसार रचा. ''चेम्मीन'', ''कयर'', ''रंटिडंगषि'' आदि. उनकी सभी रचनाएं आंचलिक छाप लिये हुए हैं. हिंदी में ''ष'' ध्वनि नहीं है. ''तगड़ी'' के स्थान पर पिल्लै जी के नाम के साथ ''तगषि'' लिखा जाना अधिक उपयुक्त होता.

के. जी. बालकृष्ण पिल्लै

गीता भवन, पेरुरकटा, पो., तिरूअनंतपुरम ६९५००५

❊ ''कथाबिंब'' का अप्रैल-जून ०८ अंक मिला. राजेंद्र पांडे के निधन का समाचार पढ़ा. हृदय थम-सा गया. अभी जून में उनका पत्र आया था. वे रंग समीक्षक थे. उनका और मेरा लेख साथ-साथ ''नटरंग'' पत्रिका में अशोक वाजपेयी जी के संपादन में छपा था. समाचार पढ़ते ही मैंने अशोक वाजपेयी को फ़ोन द्वारा पांडे जी के निधन की सूचना दी. इस समय भी उनकी मुस्कुराती मुखमुद्रा मुझे अपनी ओर निहारती-सी लग रही है. प्रभु उनकी आत्मा को शांति दे.

आपकी पत्रिका अत्यंत महत्वपूर्ण है और हर अंक की प्रतीक्षा रहती है. इस अंक में डॉ. सेराज खान 'बातिश' का आलेख (आमने-सामने) सबसे पहले पढ़ा. मुग्ध हो गया - सच्ची, खरी और रची-बसी हुई रचना लगी. बहुत बार मैं भी चाहता हूं कि कुछ भेजूं किंतु जाने कैसी-कैसी बाधाएं आ जाती हैं कि संभव नहीं हो पाया. अब उम्र भी थकान पर है. ७३ का हूं लेकिन अपनी इच्छा पूर्ति अवश्य करूंगा कि आपकी पत्रिका में छपूं- गो कि मैं नाटककार हूं और मेरे नाटकों पर दो विश्वविद्यालयों में दो छात्र शोध कर रहे हैं. कुछ कहानियां लद्दाखी जीवन पर लिखी थीं.

इस बार आपका संपादकीय बेजोड़ है. अत्युत्तम जानकारियों से भरा है - मेरे अशेष धन्यवाद.

धर्मपाल अकेला,

पुनर्नवा, प्रेमपुरा, हापुड़ (उ.प्र.)

❊ ''कथाबिंब'' का अप्रैल-जून ०८ अंक प्राप्त हुआ. पूरा पढ़ा. प्रत्येक कहानी, हर कविता अच्छी लगी. लेकिन सबसे ज़्यादा अच्छी लगी वह थी ''आश्रयदाता'' (कैलाशचंद्र जायसवाल) पत्रिका पढ़ते समय, मैंने इस रचना के ऊपर लिख दिया- अंक की सर्वोत्तम रचना. ऐसा नहीं है कि और रचनाएं अच्छी न हों लेकिन यह भा गयी.

वैसे तो ग़रीब मजदूर की व्यथा (धुआं-धुआं ज़िंदगी) भावनात्मक है तो स्त्री के उत्पीड़न को बयान करती है, ''क्योंकि मैं एक स्त्री हूं'', बहुत अच्छी है. परंपराओं और रूढ़िवादिता से लड़ती. ''एक कुर्बानी यह भी'' भी अच्छी रचना है. सभी लघुकथाएं भी अच्छी हैं.

डॉ. पूरन सिंह,

२४० बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर, नयी दिल्ली- ११०००८.

❊ मैं ''कथाबिंब'' का बहुत पुराना सदस्य हूं. पत्रिका का प्रत्येक अंक यथा समय मिल जाता है, इस हेतु आपके साथ-साथ डाक विभाग का भी आभारी हूं. संपादकीय ''कुछ कही, कुछ अनकही'' में अल्प शब्दों में आप बहुत कुछ कह जाते हैं. सोचता हूं कि गर आपके विचार प्रिंट मीडिया में बदरा बनकर छा जायें और उन लोगों तक पहुंच पायें जिन लोगों तक पहुंचने की ज़रूरत है.

अप्रैल-जून ०८ अंक में प्रकाशित सभी कहानियां, गीत व ग़ज़लें स्तरीय हैं. आपके चयन और परिश्रम के लिए कोटि-कोटि धन्यवाद.

❖ **महावीर सिह चौहान**

जमालपुर किरत, पो. राजा का ताजपुर, बिजनौर (उ.प्र.)

❋ ''कथाबिंब'' का अप्रैल-जून ०८ अंक मिला. यों तो सभी रचनाएं पत्रिका के स्तर को बनाये रखने में सक्षम हैं किंतु डॉ. सेराज खान 'बातिश' की कहानी 'एक कुर्बानी यह भी' और कैलाशचंद्र जायसवाल रचित 'आश्रयदाता' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं. 'एक कुर्बानी यह भी' एक वर्ग-विशेष की आम जनमानस में बनी सख़्तदिल और बेरहम की सी छवि को तोड़ने में सफल रही है. तमाम पूर्वाग्रहों को दरकिनार करते हुए यदि इस वर्ग के करीब जाकर इसे समझने की कोशिश करें तो हम जानेंगे कि यहां भी संवेदनशील लोगों की कमी नहीं है. मेरी यह प्रतिक्रिया महज इस कहानी पर नहीं वरन् व्यक्तिगत अनुभवों पर भी आधारित है. उधर 'आश्रयदाता' सरकारी दफ़्तरों के भ्रष्टाचार और आमप्रजा की बेबसी को भली-भांति उजागर करती है. इस अंक से आरंभ हुआ कॉलम 'बाइस्कोप' 'कथाबिंब' का सबसे बड़ा आकर्षण साबित होगा इसमें कोई संदेह नहीं. वरिष्ठ अभिनेत्री, लेखिका और फ़िल्म-पत्रकार सुश्री सविता बजाज की कलम से निकले इस कॉलम का निःसंदेह पाठकों को बेसब्री से इंतज़ार रहेगा.

....और अंत में एक विनम्र निवेदन, कृपया प्रूफरीडिंग पर समुचित ध्यान दें. सेराज खान का 'सरोज खान' और शिशिर कृष्ण शर्मा का 'शिशिर कुमार शर्मा' छपना (संदर्भ : जुलाई-दिसंबर ०७ अंक) पत्रिका की गरिमा और गंभीरता को थोड़ा कम तो करता ही है.

❖ **शिशिर कृष्ण शर्मा**

ए/६०४, कार्तिक्या टॉवर, साईंबाबा नगर,
मीरा रोड (पूर्व), ठाणे- ४०११०७

❋ अंक १०२, अप्रैल-जून ०८ देखा पढ़ा-समझा. माला वर्मा की कहानी ''डॉक्टर की फीस'' तथ्य और शिल्प दोनों दृष्टि से उच्चकोटि की कहानियों की श्रेणी में रखे जाने योग्य है. 'ग़रीब जगेसर के ज़ेहन में यह बात बराबर कौंधती रहती है कि पत्नी का इलाज कराया और डॉक्टर की फीस नहीं दे सका. उस ऋण से उऋण होने के लिए जगेसर ने डॉक्टर की लड़की की शादी में हाड़तोड़ मेहनत की. जगेसर तो उऋण हो गया किंतु डॉक्टर के ऊपर जीवनभर का कर्ज लाद गया जगेसर. डॉक्टर पर कुछ ऐसा मनोवैज्ञानिक असर पड़ा कि ग़रीब जगेसरों के मुफ़्त इलाज करने का उन्होंने संकल्प ले लिया.' इस कथ्य को लेकर कहानी की बुनावट लाजवाब है. दुबारा-तिबारा पढ़ने पर भी कहानी वही ताज़गी देती है. जनाब सेराज खान 'वातिश' साहब की कहानी ''एक कुर्बानी यह भी'' कुर्बानी प्रथा पर एक मौलिक नयी दृष्टि है. विषय की नवीनता और कहानी बुनने की कला वाकई काबिले तारीफ़ है. आनंद बिल्थरे की लघुकथा ''सलमा'' में कथ्य की मारक क्षमता अधिक है. ''कथाबिंब'' ने तीस वर्षों का सफ़र एक साफ़-सुथरी और संग्रहणीय पत्रिका के रूप में तय किया है, बधाई. रचानाओं के चयन में आपकी सजगता अनुकरणीय है. सबसे बड़ी बात तो यह है कि प्रूफ और भाषा की अशुद्धियां खोजे नहीं मिलतीं. पूरे देश के समकालीन कथाकारों-कवियों को संजोकर प्रस्तुत करने की आपकी अपनी एक विशिष्ट कला है. रचनाकारों का जो आत्मीय जुड़ाव ''कथाबिंब'' के साथ है, अन्य पत्रिका के साथ देखने को नहीं मिलता. अंक की सभी रचनाएं एक से बढ़कर एक हैं. सही अर्थों में ''कथाबिंब'' समकालीन रचनाकारों का एक तीर्थ है.

❖ **अजीत श्रीवास्तव**

शिवकृपा सी-४/२०४- १ काली महल, वाराणसी

❋ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून २००८ अंक पढ़ा. 'डॉक्टर की फ़ीस' कहानी पर आपकी टिप्पणी ठीक लगी परंतु 'एक कुर्बानी यह भी!' को आपने कहानी माना यह पाठकों के साथ आपने ठीक नहीं किया है. बातिश का 'आमने-सामने' चलेगा परंतु 'एक कुर्बानी यह भी!' में भाषा के स्तर पर भी बचकानापन है. वाह! क्या भाषा है- 'वे गाय-सुअर सभी खा जाते हैं और शायद इसीलिए वे दो महत्वपूर्ण संप्रदायों पर राज करते रहे.' इसका मतलब हुआ कि सुअर नहीं खाने की वजह (अर्थात सिर्फ़ गाय खाने से) से मुसलमान सिर्फ़ एक महत्वपूर्ण संप्रदाय पर राज कर सके. वे कहते हैं कि भारतीय मूल के दो धर्म जैन-बौद्ध शायद हिंदू धर्मबलि के अति पर ही अहिंसक हो गये थे. लगता है कि पहले ये दो धर्म भी हिंसक थे. तो इस प्रकार पुत्र की जगह पशु की कुर्बानी की रीति चल पड़ी. इसका मतलब यह कि पहले पुत्र की कुर्बानी दी जाती थी. (तब तो शायद कुर्बान पुत्र का गोश्त भी खाया जाता होगा). पैगंबर इब्राहिम के साथ हुई चमत्कारिक घटना के बाद लोगों ने पुत्र की कुर्बानी देना बंद कर दिया.

क्या फ़ायदा? पुत्र की कुर्बानी देकर ? जब वह ज़िंदा बच जायेगा और उसकी जगह दुंबा मरा मिलेगा? और इस तरह पशुबलि की प्रथा चल पड़ी. मैं सेराज खान 'बातिश' से पूछना चाहूंगा कि कैसे सिद्दीकी साहब पैगंबर हजरत इब्राहिम की तरह कुर्बानी नहीं दे सके थे ? उनके बेटे नहीं थे सो उन्होंने बेटियों की कुर्बानी देना चाहा था ? नहीं-नहीं कहानी में लेखक ने ऐसा नहीं लिखा है. लेकिन यह कहानी की भाषा नहीं है. यदि उन्होंने दिखाया होता कि कैसे कुर्बानी के लिए महीना-छह महीना पहले बकरा ख़रीद कर लाया गया. कैसे घर के बच्चों ने उसे घास खिलायी, रोटी खिलायी और उसके साथ खेले-कूदे और धीरे-धीरे बच्चे और कुर्बानी के बकरे में लगाव पैदा हुआ जिसकी कुर्बानी देना सिद्दीकी साहब के लिए असंभव हो गया तो वह कहानी की भाषा होती. बातिश साहब जानवरों की कुर्बानी की प्रथा ही चलायी जा सकती है. बेटे को कुर्बानी के लिए तैयार करना आसान है क्या, यदि बेटा मानसिक रूप से बीमार न हो. संपादक जी, यदि आपको यह कहानी छापनी ही थी तो एक इसका पुनर्लेखन करा लेते एक ज़िम्मेदार संपादक के नाते.

निर्भय मल्लिक से कवि सुरेंद्र दीप की बातचीत अच्छी लगी.

❖ **असीम कुमार आंसू,**

ए-४०३, एस्टर, वैली आफ फ्लॉवर, ठाकुर गांव,
कांदिवली (पूर्व), पिन- ४००१०१

कहानी

कोढ़ फूटेगा

एक आप कविता नहीं लिखते हैं इस देश में. न ईमानदारी अउर सराफत का ठेका सिरिफ आपे अकेला लिये हुए हैं. ढ़ेर सारे अउरो लोग होंगे जो ई सब काम करते होंगे, लेकिन जइसा आपने, अपने बाल-बच्चों को रखा है, सायदे अइसा हालत में किसी ने अपने परिवार को रखा होगा. पनरह बरस से सुनते-सुनते कान पक गिया है कि ई साल कोआटर मिलेगा त ऊ साल मिल जायेगा...नहीं मिला तो कहीं अपना मकान बना लेंगे....ये करेंगे.....वो करेंगे.....बाबा जी का घंटा करेंगे....

''चूतिया बनाते हैं स्साला...जिनगी है कि जहन्नुमो से बदतर हो गया है. सारा दिन तो ख़ुद आपिस में पंखा के नीचे बइठ के हवा खाते हैं....पेपर पढ़ते हैं....दुपहरिया में इस झोपड़िया में का हालत हो जाता है हम लोगन का, ऊ हमीं जानते हैं. एक दिन ई गरमिया में झोपड़े में रह के तो देख लीजिए के कतना मज़ा आता है. दुपहरिया में जब धूप नंगा होकर अलबेसटस का छत का ऊपर नाचता है....अरे नाचने लग जाइयेगा नाचने. छुट्टी का दिन त डयरी-कलम ले के लयबरेरी चल देते हैं....ठंडा कमरा में बइठ के कबीता लिखने. अरे हम लोग कौन लायबरेरी में जायें. ई तो गनीमत कहो कि बस्ती में दू ठो बरगद अ पीपर का पेड़ है...नहीं त कब का जल भुन कर हम खतम हो गये होते.

अउर आप त चाहते भी यही हैं कि हरामजादी मर-खप जाये त कौनो दूसर पुतुरिया कहीं से उठा लायें...देख लेना, कोढ़ फूटेगा...कोढ़. कीड़े पड़ेंगे....अरे कउन औरत अतना तकलीफ उठा के भी रह सकती थी आपके साथ. साला बदन पर एकठो ढंग का लुग्गा नहीं....वही एक जोड़ा झिल्ली-झिल्ली साड़ी....साल भर से धो-धो कर पहनना. न सिर में लगाने के लिए कभी ढंग का साबुन-तेल लाकर दिये न कभी सिंगार-पटार का कउनो समान. वही लयफबॉय से नहाओ, सरसों का तेल लगाओ. कहती ....गिड़गिड़ाती रह गयी.... ए जी. ई साल परब में एगो बढ़िया साड़ी ला कर दो ना. आज तक नहीं पहन पायी मन लायक कउनो कपड़ा.....वही सौ पचास की फुटपथिया, पटरीवाली साड़ी....अं बीस-पच्चीस का पिलासटिक वाला चप्पल....छिः अइसन जिंगी जीने से त अच्छा है, आदमी मरिए जाये. ऊ त लड़का सब है कि उनका मुंह देख के चुपा जाती हूं नहीं त कब का गंगा में कूद गयी होती. बीस बरिस हो गये आज तक एक्को अरमान जे पूरा हुआ होता....कहते रह गयी कि एजी. चलिए ना हम लोग एक साथ एगो फोटू खिंचवा के मढ़वा के झोपड़ी में कहीं टांग देंगे...मगर नहीं....अपने त कहां-कहां का परोगराम में फोटू खिंचवा के कॉपी में साट-साट के रखे हुए हैं. ई देखो, फलनवा है....ई ढेकनवा है. नामी लेखक है. ई कबुतरी है. कबीता लिखती है. बहुत मसहूर है. कइठो इनामो मिला है. मुझे भाई कहती है. भाई कहती है? हमी को उल्लू बनाने चले हैं. जइसे हमको कुछ मालूमे नहीं है. अरे कौनो दुसरी औरत होती ना त कब का मू में मूत के चली गयी होती. अरे ई त मेरी जइसन है कि तुमरे खूंटा से गाय की तरा बन्हा गयी....अउर जोर जुलुम सह रही है.

।। नूर मुहम्मद 'नूर' ।।

सरम है? एकहि पलंगरी पर चार गो लड़का-लड़की सटकर, अड़ंस कर सोते हैं. गरमी में बुरा हाल रहता है. एक ठो, बाबा आदम के ज़माना का टेबुल पंखा. करिया-भूचेंग...देखो तो डर लगे...ऊ भी कारबन आ तेल भरो तो चलता है. अउर आवाज़ अइसा की कौनो चटकल का मसीन.

रात दिन सब लड़ता-झगड़ता है. हवा के लिए कोई अपनी ओर घुमाता है, तो कोई अपनी ओर खींचता है. कहते रह गयी की एगो छोटा सा पंखा अउर ला दो. बच्चा लोग को बहुत सांसत होता है. मगर नहीं, काने ख़राब है. अब कउन जाने काने ख़राब है की दिमाग. जब देखो तो कांपिए-कलम लेके बैठे रहते हैं. मानो लिख-पढ़ के कउनो बड़का तीर मार रहे हैं. पहाड़ तोड़ रहे हैं. गालिब हो जायेंगे.

अरे कउन पूछता है आज का ज़माना में लेखक लोग को. का हुआ? बांट त दिया था अपना किताब अपीसर लोग को रेवड़ी की तरा. बड़ा सान बघारते थे कि फलनवा बहुत बड़का अपीसर है. इज़्ज़त से हमको बइठाया, चाह पिलाया, बोला - ''हो जायेगा

आप का काम. चिंता मत करिए.'' घंटाऽऽ हो जायेगा. जी.एम. को किताब दिया था, ऊ दिन उसके डरेबर का लड़का, बड़कू से पूछ रहा था - 'तेरे पिताजी कबी है का बे- उनका कउनो किताबो निकला है का. मेरे घर में है. जी.एम.बदली होने का टेम, पिताजी को सब कांपी, किताब पेपर मैगजीन रद्दी में बेचने को बोला था. पिताजी सब जीप में भरकर ले गये थे बेचने. उसी में था तेरे पिताजी का किताब. उसमें फोटू भी है ना पीछे तेरे पिताजी का....का इज़्ज़त किया जी.एम. ने किताब का.

कहते रह गयी कि एजी मत बांटो किताब. कौनो अपीसर काम नहीं आयेगा. ऊ भी रेल का अपीसर त भगवानो से बड़का होता है. छोटा-ग़रीब आदमी का सुनवाई कहीं नहीं होता. चाहे मंतरी हो, अपीसर हो, चाहे भगवान पर हमरी बात कब माने. कतना बार बोली की गांव चल चलो वहां अपना थोड़ा ज़मीन, खेतीबाड़ी है, टूटा-फूटा पुराना सही, अपना घर है. उसी को ठीकठाक करा लेंगे. वहीं रहेंगे. वहां का इसकूल कौलेज नहीं है. आख़िर गांव का लड़का लोग वहीं न लिख-पढ़ के इधर-उधर नीमन-बाउर नौकरी कर रहा है सब. अपना बच्चा लोग भी वहीं पढ़ेगा. आप आते-जाते रहिएगा. कौन सा किराया-भाड़ा देना है. लेकिन, नहीं माने तो नहीं माने. लोग का कहेंगे? इतना बड़का सहर छोड़ के इहां गांव में बच्चा लोग को पढ़ा रहा है. परेसटीज ख़राब हो जायेगा. ई बड़ा आ नामी सहर है. दस आदमी जानते हैं. मान मरियादा है. गांव में कउन जानता है की ई कउन है? कतना नामी आदमी है. सहर में लड़का लोग नहीं भी पढ़ पायेगा तब्बो हुसियार बनेगा. गांवन में त पढ़इए ठीक से नहीं होता है. मास्टर लोग त खाली हजरिए भर लगाता है अउर सारा दिन अपना खेतखरिहान देखता है. अउर इधर इस स्कूल में लड़का लोग सारा दिन पहाड़े पढ़ता रहता है दू का दू...दू दूनी चार....ना ऽऽ इहां सब पोखरी-पोखरी, बगइचा बगइचा घूम के सब बिगड़ जायेगा. लंढ़ेर हो जायेगा सब.

अरे तऽऽ अब इहेंऽ पढ़ि के ई सब कउन तीर मार मार ले रहा है. रात दिन हांकिए किरकिट खेलता है, टी बीए देखता रहता है सब. अ उपर से रात-दिन झगड़ा मारपीट. पचास गो ओरहन रोज़े आता है की फलनवा को मार दिया, त ढ़ेकनवा का दुका त छोर लिया.

सारा दिन त हड़ंच के खाता है तबवो..खाऊं-खाऊं किये रहता है. अतना खाने पर भी पेट नहीं भरता. मगर चेहरा देखो तो लगता है जइसे इन लोगन को खाने नहीं मिलता है.

१७ अगस्त १९५४; गांव, महासन, (महुअवां कारखाना), जि. कुशीनकर, (उ.प्र.)

प्रकाशन : कविता संग्रह 'ताकि खिलखिलाती रहे पृथ्वी' (१९९७), कहानी संग्रह 'आवाज़ का चेहरा' (२००३), ग़ज़ल संग्रह 'दूर तक सहराओं में' (२००६) में प्रकाशित. 'सफर कठिन है.' शीर्षक ग़ज़ल संग्रह प्रकाशनाधीन. उपन्यास 'आश्चर्यपुरम' एवं आलोचना 'सन्नाटे का सृजन' पर काम प्रगति पर. संग्रह 'नीम हकीम खतरएजान' यंत्रस्थ.

विशेष : विभिन्न पत्रिकाओं के लिए निरंतर समीक्षा कर्म. द्विभाषी पाक्षिक पत्रिका 'उत्सवपुर्वरी' में पिछले तीन वर्षों से स्तंभ लेखन. पहले भी कई पत्रिकाओं के लिए यह कार्य.

अन्य : कई एक ग़ज़ल गायकों द्वारा आपकी ग़ज़लों का गायन. हिंदी की तमाम लघुपत्रिकाओं में विभिन्न विधाओं की रचनाओं का निरंतर प्रकाशन. मित्रों के अनुसार सिर्फ ग़ज़लकार.
कवि सम्मेलनों, मुशायरों, गोष्ठियों, सेमिनारों, रेडियो-दूरदर्शन और लेखक संघों से हमेशा के लिए किनाराकशी, ताकि कुछ क़ायदे से भी लिख-पढ़ सकूं.

भाषाएं : अरबी, फारसी, उर्दू, बांग्ला और अंग्रेजी किंतु लेखन सिर्फ हिंदी और मातृभाषा भोजपुरी में. संप्रति परतंत्र लेखन. प्रधान लिपिक.

अब चेहरो कैसे बनेगा? कैसे मांस चढ़ेगा देह पर. जब रहना झोपड़िए में है. न हवा-पानी न ढंग का लाइट. कभी इससे लाइन मांगो तो कभी उससे. कभी इ काट दे त कभी ऊ. पानी के

लिए रोज़े नल पर मारामारी. झगड़ा-फसाद. अउर घर ऐसा. लगता है घर नहीं आदमी रखने का गोदाम है. छिः-छिः, इहो कौनो जिंगी है!

हम लोगन से अच्छा त ऊ अपीसरन सब का कुत्तवन सब है, जउन ई झोपड़ियों से बड़का घर में रहते हैं. अरे अभी त कहो की गनीमत है कि खाली गरमिए पड़ रहा है. धूपे नाच रहा है. चलने दो ना बंगाल का खाड़ी वाला तूफ़ान अकल ठिकाने आजायेगा. का हुआ था पिछला बरिस? अपने त गांव चले गये थे न्योता देने. रात का बारा बजे आया था तूफान. मोटका एगो डार टूट के गिरा था झोपड़िया के कोन पर. ऊ त सुकर मनाओ की हवा ओके ठेले के तनी पच्छिम ओर ले गया, नहीं तो वो ही रात सबका कहानिए ख़त्म हो गया होता. झमेले मिट गया होता. न रहता बांस न बजती ई बांसुरी! लेकिन ई उपरवाला कम खच्चड़ नहीं है. ऊ भी शायद यही चाहता है कि ई सब एक्के बार नहीं, तड़प-तड़प के मरे. सो तड़प रहे हैं. लेकिन जिंगी है की जोंक की तरह खून पिये जा रही है. छिः ई भी कोई जिंगी है.

सुबा साम खाली सोचो की का खायें का पहनें. कइसे रहें. न कहीं आना-जाना. घूमना फिरना. न ढंग का देह पर लुग्गा. न आंखों में कउनो सपना. उपर से कहत हैं. सबर से रहो. सब होगा. बाबाजी का घंटा होगा. अब्बा कहते थे, तरवार का एक धार होता है लेकिन सबर का सौ धार. अरे का किये आपके अब्बा. सारा जिंगी त सहर में काट दिये. चालीस बरस तक गांवे नहीं लौटे. अउर इहां जो कमाया गोस-मछरी, दारू-गांजा में उड़ा दिये. खुद खाये, यार दोस्तों को खिलाये. गांव में जो ज़मीन थी उसे भी मामला मुकदमा लड़ के पहले रेहन रखा फिर बैनामा करके खा-पी गये. मोंछ की लड़ाई लड़ने चले थे. का हुआ? न ज़मीनिए बचा न मोंछ.

ऊ त कहो कि हम गांव आने जाने लगे थे, सो गोयंड़ा का दस कटठा खेत बच गया नहीं तो गोस-मछरी की तरह ई भी पेट में समा गया होता. सब ख़तम करके उपदेस दे के खुद्दे ख़तम हो गये. सबर करो. सबर करो. अरे कइसे कोई सबर करे, अऊर केतना सबर करे. बरसने दो ना पानी ई बार सारा सबर बह-बिला जायेगा. कहां नहीं चूता है पानी. झोपड़े में. एक्को समान सुबहित बचता है? कपड़ा लत्ता, बिछौना चौका, चौकी, पताई. सब त भींग जाता है. ख़ुद त छाता खोल के बइठ जायेंगे चौकी पर आ मेहरारु, लड़का लोग भीगे ते भीगें.

पिछला बरस त बच्चा लोग का सब कांपी किताब तक

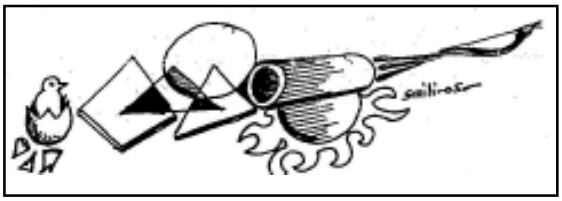

भीग गया था. तकिया बिस्तरा आ लड़का लोग का नींद तक. ख़ुद त बोतल टान के सो गये थे. ई हो नहीं सोचा कि लड़का लोग....छिः अइसा गैरज़िम्मेवार आदमी दुनिया में सायदे कहीं हो. कहते हैं दुनिया बदल देंगे. घंटा बदल देंगे. एगो घर त बदला नहीं जाता, चले हैं दुनिया बदलने.

अरे जो बदलना है कविते में बदलो. कविते सब कुछ बदलता है. कविता के बाहर जौन दुनिया है वैइसने रहती है. बा अउरो ख़राब होती रहती है. वहवाही बटोरने के लिए अब जतना झूठ भर सकते हैं कविता में भरिए. कोई अब बोलने रोकने वाला त अब है नहीं. आपके अब्बा ही न कहते थे आपको, की बेटा दीवाल मत फानो, चोट लग जायेगा. नहीं मानोगे तो दीवाले एक दिन सिखा देगा. आपको भी ई दीवाले सिखायेगा एक दिन. कबिता कहानी का जो दीवाल आप रोज़े बना -फान रहे हैं ना, एक दिन आपे पर ढह जायेगा, आ कंचरा के मर जाइयेगा. लेकिन नहीं. मरे हुए त आप कब से हैं. ज़िंदा आदमी त जिंगी जीता है. बढ़िया आलीसान जिंगी, कबिता थोड़े लिखता है. हारे हुए, मरे हुए गैर ज़िम्मेदार आदमी का काम है ई सब. जिंगी से भागे हुए...भगौड़ा आदमी.

काका सपना नहीं देखे थे. सोचते थे की शादी होगा तऽऽ पढ़ा-लिखा हुसयार सौहर मिलेगा. ओकर अपना एगो रहे लायक़ घर होगा. घर में जंगला, आ जंगला पर परदा होगा. अंगना होगा. आ रसोई घर. लेकिन सब सपना, सपने रह गया. हाय री दइया. हमको का मालूम था की ई बड़का-बड़का झोंटा वाला हिप्पीकट हीरो कबीता लिखता है. की सब-कुछ सपनवे में ही बनाता है. हाय रे मोरा भाग. हम त फोटुवे देख के दीवाना हो गयी थी. रिसता त एक से एक आले-आले घर से आया था. कउनो डागदर था, त कउनो बड़का बिजनेस वाला, बाड़ीवाला. लेकिन कहते हैं ना कि नसीब ख़राब हो जाये तो सब ख़राब होने लगता है. भूजल-पकावल मछरी तक पानी में कूद जाती है. वही दुरदसा हमरा अब हो रहा है.

हमरा जिद जान के हमरे अब्बा हमको कम डांटे थे. 'अरे का है रे! बस दू अच्छर पढ़ा है ऊ. का है उसके पास. बाप गल्ली-

गल्ली, मुहल्ला मुहल्ला - फेरी लगा के चूड़ी बेचता है. चूड़ीहार है. एक कमरा का भाड़ा का घर में रहता है. घर में ढंग का कौनो सामान न कुछ. देहाती आदमी है. मुल्की. लड़कवा सुन्नर है तो का लड़कवे को चाटेगी.' हाय रे नसीब. तब हमको अपने बाप का बात बहुत ख़राब लगा था. खाना-पीना तियाग दिया था, खटवांस-पटवांस ले लिया था. हफता भर खटिया पर पड़े-पड़े बीमार पड़ी रही. बाद में हमारा हालत देख अब्बा घबरा गये. एक दिन आकर समझाये अरे ना रे पागल. उठ. खा-पी. काहे जान देती है. तेरा बियाह ऊ हिप्पीए के साथ होगा. तब हम खटवांस-पटवांस छोड़े. हाय रे दईया. हमको का मालूम था की ई हीरो त कबीता देवी के साथ पहले ही बियाह रचा चुका है.

रत्तीभर भी हमको अगर इलिम हो जाता की मेरा ई हाल हो जायेगा एक दिन, की एक जोड़ी ढंग का लुग्गा, एक थान बीखो आ साबुन-तेल तक के लिए तरसना पड़ेगा, त जहर खा के मर जाती लेकिन बियाह नहीं करती. सो ग़लती का फल भोगना पड़ रहा है. जो मां-बाप का कहना नहीं मानता, उसका यही हाल होता है. सो हमरा हो रहा है. कहां तो डागदर के घर जा रही थी अउर आके मर गयी भुसफांकन फकीरे के घर. अभी केतना दिन हुआ, आपका कौनो दोस्ते कह रहा था, की कौनो कबी था जो बरेनटूमर से मर गया. दवाईबीरो तक का पईसा नहीं था, सो दरद होने पर सरसों का तेल लगाता और सिर-दरद का टेबलेट खाता था. कउन त दारुए पी-पी के मर गया. रोटी खाने का पइसा नहीं था बाकी दारू पीने को मिल जाता था. की कौनो मुरतीबोध नाम का बड़का कबी था, जे भूख लगने पर खाली चा अउर बीड़िए से काम चला लेता था. अउर दुनिया भर की रोटी-सुख का लड़ाई लड़ता, कबीता रचता था. बाप रे बाप. अइसन-अइसन महान कबी की अपनी जान, अपना बाल बच्चा घर का चिंता नहीं अउर सारा जहान का चिंता. अरे हम पूछते हैं की कौनो आदमी कबीता लिख-लिख के महान हो जायेगा त ओकरे घरवाले सब का ओकर नाम चाट-चाट के ज़िंदा रहेंगे?

अरे पेट भरने के लिए रोटी, तन ढकने के लिए कपड़ा, अउर सर छुपाने के लिए एगो घर चाहिए. पहिले ई सब बंदोबस्त कर देते. फिर सान से आप कबिता-कहानी रचते. मगर नहीं ....रहेंगे तो कविते के घर में. ठीक है. लड़कवे सब कहां रहेंगे अउर कहां रहेगी मौगी? ई त कभी सोचबे नहीं किये आप. बियाह हो गया. धड़ाधड़ चार ठो कलंडर छाप दिये और झोल उठा के घूमने चल दिये. हो गयी जिमेवारी पूरी.

सुहागरात. अब पता नहीं कैसी होती है यह रात? बियाह के पहले सोचते थे कि बियाह हो जायेगा त ई रात भी देख लेंगे, की आपे दिखा देंगे कि लो, देखो. यही है, इसी को कहते हैं सुहागरात. पर हाय री दइया. बियाह कर जिस घर में आयी वो घर ही नहीं था. एक संकरी-अंधेरी जगह. खोला-वाड़ी. उसी में दरजन भर लोग. रेल का डब्बा का तरह ठसमठस.

सब इसी में सोते-जागते, रहते, खाते-पीते. सास, ससुर देवर-देवरानी, फलाना-ढ़ेकाना, उपर पलंगरी पर और उसके नीचे भी. चारों ओर ट्रैफिक जाम. दस दिन दस रातें ऐसे ही बीत गये. इसी ट्रैफिक जाम में. पर नहीं आयी तो नहीं आयी यह रात. हाय रे. हाय! चार-चार बच्चे जन दिये....मर-मर के जी गयी अब मर-मर के जिये जा रहे हैं. लेकिन ऊ रात? कहां गयी ऊ रात. आप तो कहते थे, अरे हटाओ, रात गयी बात गयी, चलो एक सुन्नर जगह चलेंगे, वहां पहाड़ है, झरने हैं, फूल हैं हरियाली है. घाटी है. सतरह से सैंतालिस बरिस की हो गयी. नया से पुरान. पुरान से पुरनिया. अरे चोप्प रहिए. बकवास मत करिए!

काहे झूठ बोलते हैं. नेता लोग का तरह झूठा वादा करते हैं. बीवी बच्चा का, घर का दुख देखने का आंख नहीं. चले हैं, दुनिया का दुख देखने, नापने. नौटंकीबाज. मक्कार. दुनिया बदलेंगे. हुहं. अरे दुनिया में आले-आले लोग हैं लेकिन आप जैसा पागल और जाहिल शायदे कोई हो. किसी के आगे सर नहीं झुकायेंगे. तेल पालिस नहीं करेंगे. सब मूरख अऊर भरष्ट हैं. बोलने तक का लूर नहीं. हम ऐसे लोगों की जी हुजूरी नहीं करेंगे. कोआटर मिले या नहीं मिले. हम किसी के आगे सिर नहीं झुकायेंगे. सिर में तो ग़ोबर भरा है. सिर झुकायेंगे तो गोबरवा गिर नहीं पड़ेगा. संभाले रखिए अपना महान गोबर अपने महान सिर में. अरे आधा तो कटे गयी है जिंगी बाकी भी मरमर के कटिये लेंगे.

का कह रहे हैं - नखलऊ जा रहे हैं. अरे नखलऊ का, आप जहददम में जाइए. पर दूधवाला, धोबी, बर्तनवाला, और बच्चा लोग का नासता पानी का ख़र्चा देकर जाइए. मत दीजिए हमरे तेल साबुन का पइसा. मगर घर में रासन रख के जाइए और जो मांगा है वो. अब आप जहबां से लाइए. चोरी करिए, पंईचा-उधार कीजिए या भीख मांगिए.....

सी.सी.एम.क्लेम्स ला सेक्शन,
दक्षिण पूर्व रेलवे, ३ कोयला घाट स्ट्रीट,
कोलकाता - ७०० ००१
फोन - ०९४३३२०३७८६

कहानी

राग-जीवन

बड़े शहर का एक बेडरूम वाला जनता फ्लैट. उसके ड्राइंग रूम में, लोहे के फ्रेम पर तख़्ता पाटकर बनायी, दो एकजन्ना खाटें पड़ी हैं. दोनों खाटे आमने-सामने दीवारों से लगी हैं. शेष दो दीवारें द्वारदार हैं. एक द्वार भीतर खुलता है. दूसरा बाहर निकालता है.

एक खाट पर मधुसूदन बैठा है. वह पैंसठ साल का सेवा-निवृत्त शिक्षक है. दूसरी खाट पर उसकी स्त्री सावित्री पड़ी है. वह गंभीर रूप से बीमार है. डॉक्टर की मानें तो अब ख़तरे से बाहर है. मगर मधुसूदन को डॉक्टर की बात पर भरोसा नहीं होता है. उसके भीतर मृत्यु-भय भर गया है.

सावित्री के बेड के पास एक तिपाई है. उस पर पानी का जग, गिलास तथा कई तरह की दवाइयां पड़ी हैं. घर में और कोई नहीं है. बहू अभी-अभी, 'मैं घंटे भर में आती हूं!' कहकर निकली है.

मधुसूदन उठता है, धीरे-धीरे चलकर दूसरी खाट के क़रीब आता है. सावित्री आंखें मूंदे चित लेटी है. मधुसूदन खड़ा-खड़ा उसको देखता है.

'सो रही हो?' वह धीमे स्वर में पूछता है.

'नहीं, सोयेंगे क्या!' सावित्री थके भाव से पलकें खोलती है और शून्य में अपलक देखती कहती है, 'नींद आती कहां है? दिन-रात पड़े-पड़े देह टूट जाती है.'

मधुसूदन झुककर दोनों हाथों से बेड को यूं थामता है जैसे बैठना चाहता हो.

'बैठिएगा? आइए न!' सावित्री परे खिसककर जगह बनाने की चेष्टा करती है.

'तुम लेटी रहो! है जगह, हो जायेगा.'

मधुसूदन सावित्री से सटकर बैठ जाता है. उस स्पर्श में एक सुपरिचित दांपत्य-रस है. वह सराबोर होने लगता है.

'थोड़ा एकांत मिला है.' मधुसूदन कहता है और एकाएक उसके स्वर में तरंग-सी आ जाती है, 'इसका लाभ लिया जा सकता है, नहीं सावो!' कहकर वह करुण-सी हंसी हंसता है.

सावित्री कुछ नहीं बोलती है. ख़ाली एक बार आंखें मोड़कर पति को देख लेती है. उस दृष्टि में स्वीकार भाव है और एक मौन निमंत्रण. मधुसूदन के अंतर में प्यार उमड़ने लगता है.

'कुछ देर साथ, सटकर बैठ तो सकते ही हैं.' वह फिर कहता है, 'साथ सोना तो छूट ही गया.....एक कमरे में दो द्वीपों की तरह रहते हैं हम.'

सावित्री चुप ही रहती है. मगर उसकी देह बोलती है. वह हल्का-सा हिलकर मधुसूदन के शरीर से और सट आती है. दोनों ओर से स्नेह का संचार होता है.

मौन. सुख पगा मौन.

।। देवेंद्र सिंह ।।

'पता नहीं अपने घर हम कब लौटेंगे!' मधुसूदन बुदबुदाता है.

सावित्री चुप.

'सावो!'

'उं!'

'यहां तुमको परायापन का-सा बोध नहीं होता है?' मधुसूदन सावित्री की ओर मुंह करके पूछता है.

सावित्री अधमुंदी आंखों से सामने देखती रहती है.

'बेटे का घर भी अपना घर नहीं होता है, है कि नहीं?' मधुसूदन ही फिर पूछता है.

सावित्री पलकें उठाकर उसको देखती भर है.

'वहां अपना घर रोता होगा!' मधुसूदन कहता है.

दोनों के बीच चुप्पी एक बूंद की भांति पड़ी कांपती है, फिर फैलने लगती है.

'यह लटकने और चिपकने की प्रवृत्ति केवल मनुष्य में मिलती है....' मधुसूदन मुंह सीधा करके बंद द्वार को देखता ऐसे बोलता है जैसे बोलकर सोच रहा हो. बोलते-बोलते बीच में ही चुप हो जाता है.

सावित्री उसको देखती है. उसकी आंखों में कुतूहल है.

'चिड़ियों को देखो!' मधुसूदन उसी मुद्रा में सोच को आगे बढ़ाता है, 'और बहुतेरे मानवेतर जीव-जंतुओं को. वे जोड़े में

रहते हैं. घर बसाते हैं. सृजन-पालन करते हैं. और बच्चे जब बड़े होते हैं, मां-बाप से अलग हो जाते हैं. फिर वे भी जोड़े बनाते हैं. सृष्टि करते हैं. यह चक्र निरंतर चलता है. वहां मां-बाप बच्चों के घर में कभी घुसते हैं?'

सावित्री पलकें झपकाती सोचती है. फिर पलकें थिर हो जाती हैं.

'दोनों में एक फ़र्क़ है न!' वह कहती है.

'क्या?'

'सृष्टि में एकमात्र मनुष्य है जिसने घर-परिवार के साथ-साथ समाज भी बसाया है. गांव-नगर बनाये हैं. पशु-पक्षियों के समाज नहीं होते.'

मधुसूदन अभिभूत भाव से सावित्री को देखता है. वह हामी भरने के अंदाज में मूड़ी डोलाता है. मगर जल्दी ही उसका चेहरा कसने लगता है.

'समाज!.....हां, समाज बनाया तो है ज़रूर मनुष्य ने. मगर.....' वह चुप हो जाता है.

सावित्री आंखें झपकाती प्रतीक्षा करती है.

'मनुष्य ने घर बनाया.' मधुसूदन स्वगत भाव से कहना शुरू करता है, 'परिवार बसाया. कई पीढ़ियों को पनाह देता परिवार. सब प्रेम के एक सूत्र में गुंथे....फिर दायरा बढ़ाया, समाज बनाया. सामाजिकता के धागे में पिरोयी एक श्रृंखला. ...' बीच में ही चुप हो जाता है.

सावित्री पलकें थामे प्रतीक्षारत है.

मधुसूदन सोचता हुआ अडोल.

'वह धागा टूट चुका है सावो!' वह झटके से बोलता है, 'मनके बिखर गये हैं. परिवार और समाज का ढांचा भर खड़ा है. परिवार प्रेम-विहीन हो गया है. इसलिए टूटता जा रहा है. अब तो व्यक्ति भी खंड-खंड हो रहा है. ...सामाजिकता से च्युत समाज अराजकता की आंधी में पड़ गया है. जाने कहां जाकर रुकेगा यह सिलसिला!....' वह चुप रहकर मूड़ी हानता रहता है कुछ देर.

'आप तो बात को कहां से कहां पहुंचा देते हैं. एक ही लरना से सबको छांट देते हैं.' सावित्री हस्तक्षेप-सा करती कहती है, 'बढ़ती उम्र के साथ कुछ अधिक ही भावुक और निराशावादी होते जाते हैं.' उसके स्वर में व्यग्रता है. मधुसूदन अचंभित हो उसको देखता है.

'कभी कितना मज़बूत हुआ करता था आपका आशावाद!' सावित्री कमज़ोर, नकियाती आवाज़ में आगे कहती है, 'बात-

११ मार्च १९४०, तेलघी (भागलपुर), बिहार;
एम.ए.(हिंदी) पी.एच.डी.

कथाबिंब के हितैषी व नियमित कथा-लेखक

बात पर बोलते थे, 'उम्मीद का दामन कभी नहीं छोड़ना चाहिए. उम्मीद पर ही दुनिया क़ायम है.' हमको डांटते थे, 'तुम हमेशा निगेटिव होकर ही क्यों सोचती हो? हर बात का डार्क साइड ही दिखता है तुमको. इससे तुम्हारा ही नुक़सान होगा जान लो!' अब आपको क्या हो गया है? ऐसा क्या बदल गया है जो...!' वह बात को बीच में ही छोड़कर हांफने लगती है.

मधुसूदन के चेहरे पर कई रंग तेज़ी से आते-जाते हैं.

'आपको बेटे के घर में परायापन क्यों लगता है?' सावित्री दम साधकर कहती है, 'कितना अच्छे से तो सब कर रहे हैं ये, लोग. आप इनसे और क्या उम्मीद करते थे जो पूरी न हुई?...'

'हमको लगता है...' मधुसूदन हकलाते-से स्वर में कहता है, 'तुमको नहीं लगता है कि हम लोग इनके ऊपर बोझ बन गये हैं, ये लोग हमें ढो रहे हैं?'

'ढो रहे हैं तो क्या! हमने अपेक्षा भी तो यही पाली थी न! फिर बुढ़ापे में जब हम अपना बोझ ढोने में असमर्थ हो जायेंगे, तब ये हमें अपने कंधे पर उठा लेंगे. वही तो किया है इन्होंने. बीमारी की ख़बर सुनते ही बेटा दौड़ा गया. बहू भी बार-बार फ़ोन से कहती रही, 'आप लोग यहीं आ जाइए!' फिर देखिए, बेटा हमें यहां ले आया. यहां लाकर डॉक्टर-वैद, दवा-दारू, खान-पीना, फल-जूस सब तो कर रहे हैं ये. आपको कमी कहां लगती है?...'

'देखो सावो, बात कमी-बेशी की नहीं है. असल बात है कि हमको किसी के ऊपर बोझ बनना अच्छा नहीं लगता है. यह जीवन हमारा है. इसको हमें ही ढोना चाहिए. चाहे जब भी. इसको दूसरे के ऊपर लादना ठीक नहीं.'

सावित्री के क्लांत मुख पर मंद, करुण-सी हंसी आती है जो कहती है, 'कैसी बच्चे जैसी बात करते हैं आप!'

'आपकी सोच ही उल्टी है!' कुछ देर सुस्ताने के बाद वह किंचित खिन्न स्वर में कहती है, 'यही दुर्मत तो सब नास रहा है. ...यह जीवन हमारा कैसे है? क्या हम भूमि फोड़कर निकले हैं? ....हमको यह जीवन हमारे मां-बाप ने दिया है और उसके बाद भी...' सहसा मां जैसी एक निर्मल मुस्कान उसके मुख पर आती है, 'अच्छा सोचिए तो, नवजात शिशु को यदि छोड़ दिया जाय तो वह जियेगा ?'

मधुसूदन कुछ बोलता नहीं है. आंखों में हामी भर मूड़ी डोलाता है.

'शिशु को सब मिलकर पालते हैं.' सावित्री बात को आगे बढ़ाती है,'अल्हाद के साथ उसका गू-गंतर करने में भी एक आनंद है. कोई भी उसको बोझ मानता है?.....बोझ वह होता ही नहीं है. उसके लिए तो देखते हैं कितना आप उपाय करते हैं. कहां-कहां मनता मांगते हैं. फिर सब जगह छन्ना तोड़ते हैं. ...' एक टुक सुस्ताकर फिर आगे कहती है, 'ठीक वैसा ही बुढ़ापा होता है. आदमी पूरी तरह पर-आश्रित हो जाता है. बचपन और बुढ़ापा दोनों ही अवस्थाओं में आदमी परिवार-समाज पर निर्भर होता है. ...हमको तो लगता है, समाज-निरपेक्ष जीवन की कल्पना मात्र पागलपन है. मनुष्य हर अवस्था में सामाजिक होता है....' सावित्री निढाल-सी हो जाती है.

अब दोनों चुप हैं. उस चुप्पी में दीवाल घड़ी की टिक टिक ऐसी लगती है जैसे चूहा काल को कुतर रहा हो.

'देखिए,' सहसा सावित्री थके स्वर में कहती है, 'हम लोग अब ज़िंदगी की उस अवस्था में पहुंच गये हैं कि किसी न किसी के आश्रय में जाना ही पड़ेगा. मगर इसको 'बोझ' और 'लदना-लादना' क्यों कहें? यह तो ऋण-शोध है...'

फिर चुप्पी छा जाती है.

'सच-सच कहें?' सावित्री मधुसूदन की ओर मुंह घुमाकर कहती है, 'हमको तो अपनी देह ही अब बोझ लगने लगी है. यह देह मिली थी ज़िंदगी को ढोने के लिए. मगर इसने तो बोझा ही पटक दिया. ऐसी देह को भला क्यों न पंचकाठ दे दें !...'

'यह बात बीच में कहां से आ गयी? अभी तो हमको सीख दे रही थी और अब यह कौन-सा राग शुरू कर दिया?'

'नहीं, मन में जो एक भाव आता है, सो बोले.' कहकर चुप हो जाती है. आंखें मूंद लेती है.

मधुसूदन उसका मुंह देखता बैठा रहता है.

'हमारा बेटा तो कितना अच्छा है!' तभी सावित्री किलकती-सी कहती है, 'हमको प्रेम से उठाकर यहां लाया और...'

'प्रेम से?'

'हां प्रेम से न तब क्या!' फिर सहसा जैसे कुछ याद आ गया हो, उसकी आंखों में चमक आ जाती है और मधुसूदन की ओर मुंह मोड़कर कहती है, 'उस दिन जो हम लोग आ रहे थे तो हमारी ही बोगी में बूढ़ा-बूढ़ी का एक जोड़ा आ रहा था, देखे थे न !.....याद आया?'

'हां-हां याद है, बोलो न!'

'उनको भी उनका बेटा ही ला रहा था. बूढ़ी की कमर इतनी झुक गयी थी कि वह दोहरी होकर चलती थी. मगर बीमार बूढ़ा था....'

'वही ठीक था.' मधुसूदन बीच में ही काटकर बोल पड़ता है, 'हमारे ही मामले में उल्टा हो गया है.'

'क्यों?'

'यही कि बीमार होना चाहिए था हमको तो हो गयी हो तुम!'

'चुप रहिए!' सावित्री उसको झिड़कती है, 'सुनिए चुपचाप ?....बूढ़ी तो वैसे ही निहुर-निहुरकर अपना सब काम कर लेती थी. बूढ़ा लाचार था. उसको हर बार बेटा पेशाब-पख़ाना कराने के लिए गोद में उठाकर ही ले जाता था. वह क्या था बोलिए ! वह प्रेम नहीं था? कलजुग का सरबन कुमार ही था कि नहीं वह बेटा?'

'सब बेटे वैसे ही नहीं होते हैं.'

'सब न हों, मगर अभी भी हैं बहुत. हैं नहीं तो यह संसार चल कैसे रहा है? धरती तब घोर न हो जाती!....'

'कुछ नहीं होता है, फ़ालतू बात है वह सब.'

'ख़ैर न हो, मगर हमारा बेटा तो है वैसा. और बहू भी....'

'तो रह न जाओ यहीं!' मधुसूदन कुढ़कर कहता हे, 'बेटा कहता ही है.'

'दाना-पानी बचा होगा तब तो रहेंगे ही, यहां चाहे वहां. और अगर उठ गया होगा तो.....'

'उसको कौन जानता है! मगर वह सब मत बोलो, डर लगता है.'

'आप ही की बोली में तो एक लोकगीत है.' सावित्री

करुण भाव से विहंसती है, 'माताजी गाती थीं. हमको तो बोलने भी न आयेगा उस तरह. नहीं है कि 'कानने-पीटने से यम नहीं पतियायेगा!'.....'

'हां है.' मधुसूदन झुल्लाकर कहता है, 'छोड़ो इस प्रसंग को. यह सब बोलते हुए तुमको डर नहीं लगता है?'

'पहले लगता था. अब नहीं लगता है.'

मधुसूदन उसका मुंह देखता है. उसकी आंखों में आतंक है. मगर सावित्री का चेहरा निर्भाव है. वहां परम शांति है. वह शून्य में ताकती पड़ी है.... सहसा वह हिलती है. धीरे-धीरे उठने का उपक्रम करती है. मधुसूदन सहारे के लिए हाथ बढ़ाता है. पर उसका हाथ बढ़ा ही रह जाता है. सावित्री तब तक दीवार से पीठ टेककर बैठ चुकी होती है.

'पिछले दो महीने में तीन बार मृत्यु से सामना हुआ.' सावित्री शून्य में देखते हुए कहती है, 'हमने उसको नज़दीक से देखा है. ....वह न तो डरावनी है, न कुरूप. हमको तो वह बड़ी कल्याणी लगी. सभी दुखों-कष्टों से मुक्ति दिलाने वाली....अब तो यह ज़िंदगी ही डरावनी लगती है. कुरूप और गंदी. ऐसी ज़िंदगी कितनी प्यारी लगेगी जिसमें उठना-बैठना भी मोहाल हो जाय!.....पेशाब-पख़ाना तक अपने से नहीं कर सकते.....कितने दिन रात बीत गये बिस्तर पर पड़े-पड़े ....आदमी यदि जिये तो जीने की तरह जिये, नहीं तो मर जाये! यह घिनाना-घिसटना क्या है. अपने भी भोगो, औरों को भी नरक भोग करा दो. छिः परेशान करके धर दिया सबको!'

'चुप रहो! आलतू-फालतू जो भी मुंह में आता है, बोलती जाती है. यह भी नहीं सोचती कि किसी और का भी जीवन जुड़ा है.....'

'जीवन जुड़ा है, मृत्यु तो नहीं है!' सावित्री के मुंह पर शरारत भरी-मुस्कान आती है, फिर गंभीर हो जाती है, 'जब तक जीवित हैं, आपके साथ हैं.'

'कभी यह भी सोचती हो कि तुम न रहोगी तो हमारा क्या होगा?'

'कुछ नहीं होगा. नदी में से एक घैला पानी निकाल लेने पर वह दरक नहीं जाती है. पल में वह रिक्तता भर जाती है. नदी वैसे ही बहती रहती है.....'

मधुसूदन आहत आंखों से सावित्री को देखता है. सावित्री भी उसको देखती है.

'देखते तो हैं,' सावित्री मधुसूदन को देखते हुए कहती है, 'कई बार लाचारी में मां बच्चे को छोड़कर कहीं चली जाती है. तब बच्चा कितना रोता-कलपता है. लगता है रह न पायेगा. मगर ख़ूब रो-पीटकर आख़िर बहल जाता है. धीरे-धीरे मां को भूल जाता है. और जब मां लौटकर आती है तो वही बच्चा उसको पहचानता तक नहीं है. उसके पास न फटकता है. यही तो जीवन है!'

मधुसूदन जीवन के सच की आंच सह नहीं पाता है. तिलमिलाकर उठ खड़ा होता है.

'नहीं बैठेंगे तुम्हारे पास,' वह ग़ुस्से से कहता है, 'तुम अल-बल बोलकर और माथा ख़राब कर देती हो....'

उसी समय बाहर का दरवाज़ा भड़ाक से खुलता है. दोनों हाथों में कई पॉली बैग लिये बहू का प्रवेश होता है. उसके पीछे दो भारी थैलों के साथ रिक्शावाला आता है. सामान रखकर बहू भी बाहर चली जाती है. रिक्शेवाले को पैसे देकर लौटती है. दरवाज़ा बंद करती है.

मधुसूदन इस बीच अपनी खाट पर आकर बैठ गया है. सावित्री वैसे ही दीवाल से लगी बैठी है.

बहू दोनों को देखती है. उसके ओठों पर मंद मुस्कान कौंधकर लुप्त हो जाती है.

'सारा सामान ख़त्म हो गया था.' बहू प्रसन्न भाव से बोलती है, 'रोज़ सोचती थी, पर जा न पाती थी. ...बहुत बड़ा काम हो गया! अब एक सप्ताह निश्चिंत!'

वह थैलों तथा बैगों को उठा-उठाकर किचन में ले जाती है. सब सामान भीतर कर फिर बाहर आती है.

'आप चाय पियेंगे बाबूजी?' बहू बीच कमरे में खड़ी होकर पूछती है.

'पी लेंगे!' मधुसूदन रूखे स्वर में हामी भरता है.

'चाय के लिए तो ये कभी मना नहीं करेंगे!' सावित्री बहू को, फिर मधुसूदन को देखती विहंसकर बोलती है, 'वही जो कहते हैं नहीं, 'लंगड़ी गे नाच बे, त हमर एक पैर उठले!'

बहू खिलखिलाकर हंसती है. मधुसूदन की मूंछों पर भी मुस्कान की तितली डरते-डरते बैठ जाती है.

'और आप मां!' बहू सावित्री से पूछती है, 'थोड़ा-सा दूध गर्म करके दूं?'

'अभी मन नही है!'

'तब एक कप जूस ही लें! कुछ तो लेना पड़ेगा आपको भी? लाती हूं.' वह उत्तर की प्रतीक्षा नहीं करती, किचन में घुस

लघुकथा

सच के विरुद्ध

✍ डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम'

वह मेरे पड़ोसी थे, जो पंद्रह वर्ष पूर्व रेलवे में फिटर के पद पर कार्यरत थे और बरसों से सरकार से पेंशन ले रहे थे. उन्होंने नौकरी में रहते हुए दोनों बेटों और तीन बेटियों की शादियां कर दी थीं. अब उस चार कटठे के प्लॉट में पति-पत्नी के अलावा छोटी बहू और बेटा रह रहे थे. बेटे ने अपनी मर्जी से विवाह किया था. जिसकी हर एक बात मानने के लिए वह विवश था, शायद इसी कारण पति-पत्नी भी दुःखी रहते थे.

वह छुट्टी का दिन था, जब वह पास आकर बैठे. कुछ पल की ख़ामोशी के बाद बोले,''एक कप चाय के लिए दुकान पर जाना पड़ता है. इस ठंड में भी. ऐसी औलाद से क्या फ़ायदा? मैं घर से निकल जाने को कहता हूं तो कहता है कि मुझ पर मुकदमा कर दीजिए. मैं घर नहीं खाली करूंगा और न ही आपको खाना-पानी दूंगा.'' फिर वह चुप हो गये.

मैंने एक प्याली चाय और कुछ नमकीन खाने के लिए पेश की. चाय की प्याली उठाते हुए और कुछ याद करते हुए वे बताने लगे,''वकील बेटा कहता है कि आप कोर्ट में मेरे विरुद्ध गवाही देने जायेंगे, तो वह आपकी शक्ल देखकर ही कहेगा कि यह कौन पागल चला आया. इसे बाहर करो. तो मैं उस जज से यह ज़रूर पूछंगा कि जरा इससे पूछिए तो सही? क्या यह वकील इस पागल की औलाद है या किसी और की? इसे पढ़ा लिखा कर ओहदे के लायक किसने बनाया? जन्म से लेकर अब तक इसकी सारी ज़रूरतें किसने पूरी कीं? इसी पागल ने न! फिर तो यह सारी दुनिया ही पागल है जो अपनी औलाद को अपनी जान से ज़्यादा मानती है. उसकी एक छींक पर रात की नींद हराम हो जाती है. आज वही औलाद कहती है कि आप पेंशन की सारी कमाई दें तो आपको दो वक़्त की रोटी दूंगा..... क्या इसी दिन के लिए औलाद के सपने आंखों में पालते हैं....मन्नतें मांगते हैं.....दरगाहों पर चादरें चढ़ाते हैं.....और यह कहते हुए वह बूढ़ा आदमी रुंआसा हो गया था.

उसके चेहरे की झुर्रियां और गहरी हो उठी थीं, जिससे उसके भीतर पनपते दर्द के ज्वार को बखूबी महसूस किया जा सकता था.

संपादक, 'कथा सागर',
६/२ हारुन नगर कॉलोनी,
फुलवारी शरीफ, पटना-८०१५०५

जाती है.

वह पहले जूस लेकर आती है. उसे तिपाई पर रख वापस किचन में चली जाती है. थोड़ी देर में, दोनों हाथों में चाय के दो मग लिये आती है. एक मधुसूदन को थमाती है.दूसरा बायें से दायें हाथ में लेती है. एक कुर्सी को सरकाकर-सावित्री के बेड के क़रीब ले जाकर बैठती है. चाय का एक घूंट भरकर सावित्री की ओर देखती है. सावित्री भी उसी को देख रही है.

'इतना भारी-भारी सामान अकेली लादकर ले आयी!' सावित्री प्रेमिल नाराज़गी के साथ कहती है, 'बाबूजी को नहीं ले लेती साथ में!'

'बाबूजी को क्यों बेकार परेशान करती!' बहू हंसकर कहती है, 'मुझे यह सब करने की आदत है मां! कोई परेशानी नहीं होती. यहां गृहस्थी के सारे काम प्रायः औरतें ही करती हैं.....'

'फिर भी बेटी ! अभी तुम्हारा दूसरा समय चल राह है. पहले जो करती थी सो ठीक था. अब ज़रा अपना ख़याल रखा करो.'

'कुछ नहीं होता इस सबसे.' बहू के चेहरे पर लजीली हंसी है, 'आप व्यर्थ की चिंता न करें! मैं बराबर डॉक्टर के संपर्क में हूं. डॉक्टर ही तो कहती हैं, जितना काम करोगी उतनी आसानी होगी.'

सावित्री चुप लगा जाती है.

बहू और मधुसूदन भी चुप हैं .

उसे चुप्पी में जीवन का मौन संगीत बजता है.

देवगिरी/आदमपुर घाट मोड़,
भागलपुर-८१२००१ (बिहार)
मो.- ९९३१५४०४२७

कहानी

हेलिकॉप्टर

तीस वर्ष के मानसिक रोगी नंदू ने आंसू पोंछने के बाद अश्लील गाली बक दी, क्योंकि अंत में यही एक सुख था जो उसके पास रह जाता था.

घुटनों तक लटके लंबे थैले में उसने अख़बारों और पत्रिकाओं को ऐसे ठूंसा जैसे क़साई मुर्गे को, गर्दन पर हलाल का चाकू फेरने के बाद, किसी डिब्बे में घुसेड़ देता है.

सुबह निकलने से पहले ही किसी छोटे लड़के ने पीछे से आकर नंदू की पतलून नीचे खींच दी, इसी बात पर वह रो पड़ा था. परंतु जल्दी ही चुप इसलिए हो गया क्योंकि आज उसे अख़बार बांटने के साथ-साथ पूरे गांव में इस ख़बर को बोल बोलकर फैला देना था कि परसों नेता जी के साथ गोविंदा और मल्लिका आयेंगे और वो भी हेलिकॉप्टर में.

इस ख़बर के फैलते ही पूरा गांव ऐसा बल खा गया मानो किसी बुढ़िया का गठिया रोग जाता रहा हो.

बल्लू मिस्त्री तो अपनी चरमराती चारपाई से, पचहत्तर वर्ष की उम्र में भी उठ खड़ा हुआ. उसके घुटनों के कटोरे चटख़ उठे. टीवी में कभी कहीं मल्लिका के ठुमकों को देख देखकर ही उसके भीतर मानो सांसों का संचार होने लगा था तथा आजकल वह इस दुःख में भी जीने लगा था कि लोग मल्लिका की थिरकन को देख देखकर मज़े लूटते हैं. उसे साक्षात देखने की चाह में उसकी पसलियां ऐसी संचारित हो उठीं मानो मल्लिका का पसीना जैतून का तेल बनकर उसके शरीर पर आ गिरा हो. घुटनों में दर्द का बहाना बनाकर भले ही वह बहू को नुक्कड़ की दुकान से सब्ज़ी न लाकर देता हो, परंतु मल्लिका को देखने की इच्छा में वह अभी तक मीलों चलने का दम रखता है. उसकी इसी रंगीनी को भांपते हुए कुछ लौंडों ने चुटकी भी कसी थी, ''ताऊ, किसे देखने जाओगे, हेलिकॉप्टर को या मल्लिका को?''

अपनी प्रिय अश्लील गाली देकर ही उसने स्पष्ट किया, ''तुम्हारी तो ताई लगी वो. फिर भी, उसे देखने जाओगे तो दूध-बादाम खा कर ही जाना, वर्ना कहीं पता चले कि उसे देखते ही ठंडे हो गये.''

पार्टी कार्यालय में अलग ही सुगबुगाहट थी. माथों पर चिंता और परेशानी की लकीरें ऐसी उभरी हुई थीं मानों सीवेज लाइन की खुदाई से सब अस्त-व्यस्त हुआ पड़ा हो.

चौरंगी अपने नेता जी को ही कोसने में लगा हुआ था, ''नेताजी ने कार्यक्रम तो रखवा दिया लेकिन यह नहीं देखा कि इतना इंतज़ाम होगा कैसे. ये गांव है, शहर तो नहीं कि ऑर्डर किया और सामान हाज़िर. ससुरा, अभी वो पंडाल वाले ने भी जवाब नहीं दिया. कैसे होगा इंतज़ाम!''

बिरजू ने पान की पीक को उगलते हुए कहा, ''पॉलिटिक्स में आये हो तो इन सब बातों को भी सीखो.''

चौरंगी यह सुनकर मानो झुंझला उठा और अपने प्रसिद्ध अश्लील संकेत को करता हुआ बोला, ''खाक सीखो. ये तो हम ही जानते हैं कि जनता के सामने कैसी भीगी बिल्ली बनना पड़ता है. जानते हो क्यों? क्योंकि पार्टी या सरकार ही सबसे बड़ी ऐसी संस्था है जो आम आदमी का सबसे ज़्यादा चूतिया बनाती है, समझे!''

।। राजीव सिंह ।।

''वो कैसे भई?''

''वो ऐसे कि जब हम परसों कर्नल साहब के यहां बैठे थे तो उन्होंने पूछा कि हमारे एजेंडे में स्वदेशी अपनाने की बात सबसे प्रमुख है, तो ऐसे में उनका कहना था कि अपने नेता जी के बच्चे कॉन्वेंट में क्यों पढ़ रहे हैं? सब कुछ स्वदेशी, परंतु भाषा विदेशी. यह चक्कर तो मेरी भी समझ से बाहर है. कोक मत पियो, ससुरा कोक न हुआ कोक-शास्त्र हो गया.''

''अब तुम यही भाषण के चक्कर में रहोगे या कि कुछ करोगे भी ?''

''करेंगे, करेंगे, क्यों नहीं करेंगे! परंतु अपने नेता जी को मल्लिका को बुनवाने की क्या सूझी इस बार?''

''तुम तो एकदम भूचड़ नाथ हो. ये तो अपने नेता जी का ही आइडिया है. पिछली बार देखा था कि क्या हाल था? कौन आया था? संस्था और स्कूल के बच्चे और उनके साथ मास्टर-मास्टरनियां. वो भी आये नहीं थे बल्कि लाये गये थे. इस बार देख

रहे हो न कि गांव में कैसी हवा चली है? आधी आबादी तो मल्लिका को देखने जा रही है और आधी आबादी हेलीकॉप्टर देखने. मल्लिका क्या हमारे बाप की जागीर है जो इस बीहड़ में आयेगी? जनता को बुलाना है तो ये चोंचले राजनीति में जायज़ माने जाते हैं, समझे.''

''हमें कुछ मत समझाओ. इतनी ही समझ होती तो तुम ये स्वदेशी पहनने का नाटक करने के बजाय कहीं इज़्ज़त से कमा खा रहे होते.''

''तो क्या मैं हराम की खा रहा हूं?''

''हराम की नहीं, आराम की खा रहे हो.''

दोनों न जाने कब तक उलझे रहे.

उधर मंगनी देवी ने गोबर का तसला एक ओर रखते हुए गात्तो से पूछा,'' ये हेलीपोटर क्या होता है?''

गात्ते ने अपने ज्ञान का दीपक ज़रा आगे सरकाते हुए स्पष्ट किया, ''अरे वही, उड़न खटोला.''

''उड़न खटोला!'' उसका संशय चीन की दीवार जितना लंबा था.

''धत! तू भी निरी मूर्ख ठहरी. अपने बल्लू भाई का छकड़ा है न, बस वैसा ही होता है, सिर पर एक पंखा और लगा रहता है, इसी से वो चलता है.''

''अच्छा!'' उसकी आंखें स्लीपिंग ब्यूटी के समान चमक उठी थीं.

इससे पहले कि मंगनी देवी यह पूछने लगे कि क्या उसने इसे देखा है, गात्तो बोल दी, ''देखा तो मैंने भी नहीं है, लेकिन सुनीता का लौंडा मुझे अपनी किताब में इसका फोटू दिखा रहा था. मुझे उसी दिन पता चला. चल छोड़, इस बार तो सचमुच का देखने को मिलेगा, बड़ा मज़ा आयेगा.''

''लेकिन वो आयेगा कैसे? अपनी वो खाले वाली सड़क तो टूटी हुई है. और फिर आ क्यों रहा है वो?''

''कैसे आयेगा, यह तो मुझे नहीं पता, लेकिन सुना है कि बोट मांगने के चक्कर में ही आ रहा है.''

''और वो मल्ली माई कौन साथ आ रही है?''

''एक नचनी है, और कौन! इत्ते-इत्ते कपड़े पहनकर नाचती है.''

''कहां?''

''आपने मास्टर साहब के सिनेमा वाले डिब्बे में, और कहां!''

''तो क्या अपने मास्टर जी भी उसका नाच देखते हैं?''

४ अगस्त, १९६४, सुंदर नगर (हि.प्र.)

कथाबिंब के हितैषी व नियमित कथा-लेखक

प्रकाशन : 'उनके आईने' तथा 'लम्हाभर ज़िंदगी' कहानी संग्रह प्रकाशित.

संप्रति : ग्रेस एकेडमी, देहरादून, में कार्यरत एवं स्वतंत्र लेखन.

''वो क्या, अपनी निर्मला का ससुर तो खाट पर से उठ खड़ा हुआ है इस चक्कर में.''

''अच्छा ! क्या वो माई बहुत ख़ूबसूरत है ?''

''ख़ाक ख़ूबसूरत है मुई. मर्द को तो बस ये मटका कर कोई दिखा दे, उसी का दीवाना बन जाता है.'' उसने कूल्हे पर हाथ रखते हुए कहा.

गोगड़ी जो एक दिन में तेइस घंटे उनसठ मिनट नशे में ही रहता है, की पुतलियां पारे के समान फिसलने लगी थीं. उसका अभी तक मानना है कि उसकी प्रेमिका, जो मोटापे के नाम पर कलंक है, से ख़ूबसूरत दुनिया में कोई नहीं है. फिर यह कैसे संभव हो सकता है कि पूरा गांव एक औरत को देखने उमड़ पड़ा है.

फत्तू पनवाड़ी ने तो बक़ायदा दुकान पर छुट्टी का ऐलान टांग रखा है, मानो यह पान की नहीं, शराब की दुकान हो जिसे ड्राई डे घोषित करने की पूर्व सूचना देनी पड़ती है.

इस आने वाले हादसे से यदि कोई परेशान हैं. तो वह हैं स्कूल के हेडमास्टर साहब. उन्हें गांव के लड़कों का ईमान ख़राब होने का ख़तरा दिखाई पड़ रहा है, इसलिए उन्होंने सख़्त निर्देश निकाल दिये हैं कि स्कूल किसी भी क़ीमत पर बंद नहीं रखा जायेगा और अनुपस्थित विद्यार्थियों को छठी का दूध याद दिला दिया जायेगा. हालांकि इस वजह से ही स्कूल में दो गुट बन गये हैं - पक्ष और विपक्ष. दूसरी ओर पार्टी के कार्यकर्ताओं का दबाव भी बना है कि उस दिन स्कूल बंद रखा जाये. इस पर उन्होंने साफ़ कहा था, ''देश का बेड़ा ग़र्क़ करने के लिए नेता क्या कम हैं जो फ़िल्मी सितारों को भी उन्होंने साथ ले लिया है? स्कूल का जो लौंडा भागकर वहां जायेगा उसके हवाई अड्डे पर बेंत के जो

हेलिकॉप्टर उतरेंगे उससे उन्हें ज़िंदगी में यह ख़्वाहिश कभी न रहेगी.''

यह सुनकर कुछ साधारण लड़कों को अपनी पतलूनें गीली होती दिख रही थीं, इसलिए उन्होंने भीतर ही भीतर योजना बदल डाली थी.

पार्टी कार्यकर्ताओं ने तर्क दिया कि स्कूली बच्चों का व्यवहारिक ज्ञान हेलिकॉप्टर को देखने से बढ़ेगा तथा वे भी देश के विकास से जुड़ने की बात सोचेंगे.

उनके तर्क पर हेडमास्टर साहब ने पारंपरिक गाली देते हुए त्योरियां चढ़ाई थीं और कह दिया था, ''हैलिकोपटर में बैठकर जो फ़िल्मी लुगाई नेता के साथ आ रही है उसे देखकर विद्यार्थियों के किस ज्ञान में वृद्धि होगी, यह भी ज़रा बताइए. महीना भर जो थे लड़के प्रेम चोपड़ा बनकर घूमते फिरेंगे, इसका ज़िम्मेदार कौन होगा? बताइए तो!''

दोनों कार्यकर्ताओं के चेहरे ऐसे हो गये मानो बलात्कार के जुर्म में उनके चेहरों पर गरम-गरम गोबर लेप दिया गया हो.

बुद्धि देवी, नामकरण के बाद ही जिसे बुद्धि के गुणों से घृणा होने लगी थी, ने जानकी को जाकर अपने पेट दर्द का हाल बताया, ''ज़ख़ीरे की जोरू को देखना तो, गोविंदा को देखने के लिए ऐसी तैयारी कर रही है मानो फ़ौज से उसका ख़सम लौट रहा हो.''

जानकी ने भी अपने ज्ञान का तड़का दे डाला, ''जब ख़सम किसी काम का न रहे तभी तो लुगाइयां गोविंदा को देखने भागती हैं.''

उड़न खटोले के ज़मीन पर उतरने का दिन भी आ गया. पूरा गांव उसे देखने ऐसे उमड़ पड़ा जैसे मक्खी के मरने पर काली चीटियां जमा हो जाती हैं.

नंदू ने भी अख़बारों से भरा थैला लिया और वहां यह सोचकर पहुंच गया कि लौटकर अख़बार बांट आयेगा.

हेलिकॉप्टर और मल्लिका से बनी गठबंधन सरकार ने हेडमास्टर साहब को स्कूल बंद रखने के लिए विवश कर डाला और इसका ईनाम उन्हें अतिथियों के लिए बनाये गये पंडाल के नीचे पड़ी कुर्सी देकर दिया गया. सूरज सिर पर चढ़ने को आतुर था.

स्टेज पर लगी माइक व्यवस्था इतनी लचर थी कि अभी तक दूसरा एंप्लीफ़ायर नहीं पहुंचा था. पहले वाला एंप्लीफ़ायर अपनी चूं-चां की आवाज़ से हवा के भीतर आग ही लगा रहा था. पार्टी कार्यकर्ताओं के पास फ़ंड की कमी का हवाला था, जिसके रहते पुख़्ता इंतज़ाम नहीं हो पाया था.

स्टेज कौन संभालेगा, इसका निर्णय अभी बाक़ी था. चौरंगी की परेशानी में चार चांद उस समय लगते जा रहे थे जब वह स्टेज संभालने वाले को ढूंढ़ रहा था तथा उस समय किसी से इस विषय पर बात करते हुए उसका चेहरा एकदम ऐसा हो उठा मानो जुलाब करने बैठा हो. दूसरी ओर उसके साथी की हालत ऐसी पतली हो रही थी मानो राजनीति में प्रवेश लेते ही उसने इस उक्ति को अपना लिया था कि परिश्रम सफलता की कुंजी है, हालांकि पिछले इलेक्शन के बाद उसने सिर्फ़ परिश्रम ही परिश्रम किया था. सफलता के लिए नेता जी उसे सपने में भी अलादीन के चिराग़ के जिन दिखाई देते थे, जो कभी तो प्रकट होंगे और अपने आक़ा की इच्छा पूछ लेंगे.

टेपरी इस क़यामत को देखने अकेली नहीं आयी थी, अपनी पांच बकरियां भी चराने साथ लायी थी. पंडाल की पिछली पहाड़ी पर उसने अपनी जगह बना ली थी.

सुरक्षा व्यवस्था वाले आज अपने को किसी ब्लैक कैट कमांडो से कम नहीं आंक रहे थे, परंतु लौंडों की बेहूदगियों से परेशान होकर वे एक ओर खड़े होकर खैनी और बीड़ी का मज़ा लूट रहे थे.

केसरी देवी इस धोखे में आ गयी थीं कि वहां 'जै संतोषी मां' नामक सिनेमा दिखाया जायेगा.

हेडमास्टर साहब ने नंदू को देखा तो पुकारा, ''अबे ओ चंडू, ला एक अख़बार दे.''

नंदू उस ओर ऐसे लपका जैसे बच्चे शादियों में फेंके जाने वाले सिक्कों पर लपकते हैं.

हेडमास्टर साहब ने अख़बार लिया और खोलकर पढ़ने लगे, ''शिक्षा प्रणाली में नयी तकनीक प्रयोग में लायी जायेगी.'' इतना पढ़कर ही वह भड़क उठे, बोले, ''प्रणालियां बाद में, पहले सरकार नालियां साफ़ करवाने का इंतजाम करे. गलियां गू से भरी हैं और चले हैं शिक्षा प्रणाली में नयी तकनीक लगाने.''

फिर उन्होंने नंदू को देखा जो किसी अपेक्षा में मुंह खोले खड़ा ताक रहा था. उन्होंने दुत्कार दिया, ''चल, कल स्कूल आकर पैसे ले जाना इसके और जा, वो पुलिस वालों से दो बीड़ी मांग ला.''

फिर वह अपने सहकर्मी की ओर मुड़कर बोले, ''क्यों शंकर नाथ, सुना है तू आजकल ललिता मैडम से बड़ी मीठी-मीठी बातें करता है. इस बुढ़ापे में तुझे उस बुढ़िया से क्या मिलेगा?''

शंकर नाथ ने भी चाबी घुमायी, ''जो तुझे अभी तक तेरी

मल्लिका से नहीं मिला.''

''चुप, रुसाला! बड़बुक!''

स्पीकर अपनी चीनी भाषा में ऐसी आवाज़ें निकालते, मानो हवा में कोड़े बरसा रहे हों. सब्ज़ी वाले मट्टू ने माइक संभाल लिया था, ''हैल्लो हैल्लो. टेश्टिंग..टेश्टिंग..''

दूर लौंडों की टोली में से कोई चिल्लाया, ''तेरी भैण की.''

जो चिल्लाया था, उसकी बहन का चक्कर इन दिनों घोड़ेवाले के साथ चल रहा था. इस बात से सारा गांव वाकिफ़ था, सिर्फ बहन के भाई को छोड़कर.

मुलखी देवी बार-बार आकाश को देखती मानो भद्द से हेलिकॉप्टर मैदान में आ गिरेगा.

और तभी आसमान की नसों में घरघराती आवाज़ तैरती-कांपती हुई हवा में फैलने लगी. लोगों के चेहरों पर संशय की लकीरें खिंचने लगीं, मानो रात में कुत्ते बाघ के आने को सूंघने लगे हों.

''.....आ गया, आ गया.'' छोटे स्कूली बच्चे चीख़ने लगे.

कई लोग ऊंची जगह से उतरकर नीचे आ गये. इस पर घोषणा की गयी, ''जो लोग मैदान में आये हैं, उनसे अनुरोध है कि चूने की लकीर से आगे न आयें. मंत्री जी पधारने वाले हैं.''

प्रशासन व्यवस्था के वीर सिपाही मानो हार मान लेंगे.

ख़तरे के अंदेशे को बूझते हुए हेडमास्टर साहब अपने पंडाल में से बाहर निकले और हिटलर के अंदाज़ में मैदान की सीमाओं को नापा. लौंडों के साथ-साथ स्कूल के पुराने भगोड़ों की तो जैसी नानी मरने लगी.

आकाश में एक काला धब्बा उभरा. और देखते ही देखते हवा में मानो सहस्त्र तलवारों का नाद कटने-फटने लगा. घबराहट के मारे टेपरी की पांचों बकरियां न जाने कहां नदारद हो गयीं और टेपरी अपनी संपत्ति को संभालने भाग खड़ी हुई.

समुद्र की सुनामी लहरों का सा गर्जन गांव के पोर-पोर में जा घुसा. ज़मीन का अंधड़ बिगड़े हुए घोड़ों के समान उठने लगा. खड़े लोगों की टांगें कांप उठीं. उन्हें हवा में ठहरा हुआ उड़न खटोला फन फैलाये हुए काले नाग-सा दिखाई पड़ा और इसके बाद धूल से भरी आंधी ने मानो उन्हें अंधा कर दिया. गर्द का गुबार ऐसे उठा जैसे एटमी परीक्षण यहीं हुआ हो. हवा के तूफ़ान से जूझते कई लोग चूने की रेखा के परे जा कर गिरने-पड़ने लगे. मैदान के ऊपर हवा में ठहरा हुआ काला शेर दहाड़े जा रहा था.

मुलखी देवी आज अपने आराध्य को भूल गयी और उड़न-खटोला को ही ईश्वर का रूप मान बैठी. दूर से ही उसने कई बार हाथ जोड़कर उसे प्रणाम किया, उसका बस चलता तो उड़न खटोले के पहियों को पांव समझकर छू आती.

हेलिकॉप्टर का यह बवंडर गांव वालों के लिए किसी क़यामत से कम नहीं था. बबलू हलवाई की तो आंखें फटी की फटी रह गयीं. वह अपने आराध्य को याद करता हुआ अपने में ही बुदबुदाया था - 'हे भगवान! आदमी ने ये कैसी-कैसी बला ईजाद कर डाली है!' उसकी कूपमंडूकता के भ्रम इस अजूबे को देखकर ही टूटे. उसने वहीं बैठ- बैठे निर्णय लिया कि अब से वह 'गणेश लड्डू' के साथ-साथ 'हेलिकॉप्टर' छाप मिठाइयों के डिब्बे भी बनवायेगा.

लौंडे मल्लिका की जिस चिकनाहट की झलक पाने आये थे, वे इस महाकाल को उतरते देखकर यह भूल गये कि इसके भीतर ही वह जादू बैठा है जो सिर चढ़ बोल रहा था.

गांव वालों को आज अपने बौनेपन का एहसास कहीं कुरेद रहा था. हेडमास्टर साहब स्वयं इस बात से चकित थे तथा सोच रहे थे कि चौरंगी की बात सच ही थी कि बच्चों के व्यवहारिक ज्ञान में वृद्धि होगी. आंखों में धूल घुसने के बावजूद वह उन विशाल चिंघाड़ते डैनों को देखने से अपने को रोक नहीं पा रहे थे.

चूने की लकीर के अंदर तथा आस-पास जितने भी धूल की चपेट में आये थे उनके सिर के बाल ऐसे खड़े हो गये थे मानो स्टेज पर रावण के राक्षसों का अभिनय करने जा रहे हों. राम लाल की हिमेश इश्टाइल टोपी आकाश की गहराई में उड़कर गुम हो गयी थी, माथे के उड़े हुए बालों को छिपाना अब उसके लिए मुश्किल हो रहा था. तूफ़ानी भगदड़ में न जाने कैसे बंटू के दादा की धोती की 'बैक टाई' जांघों के बीच लटक गयी थी, यह ग़नीमत मानो कि अंधड़ में वह उड़ी नहीं, क्योंकि वह वेग के कारण जिस्म से चिपकी की चिपकी रह गयी थी. अपना यह हाल देखकर उन्होंने, अपनी आदत के ख़िलाफ, उन लोगों को बड़ी गंभीर अश्लील गालियां बक दीं जो गिरते-पड़ते उन पर चढ़ आये थे.

कुछ ही देर में वह काला खूंखार भंवरा ज़मीन पर उतर गया. स्टेज पर से चौरंगी अपने अस्तित्व को दर्शाने के लिए बोलने को ही हुआ कि माइक की चिपड़ चूं फिर होने लगी. अपनी भीतरी गालियों को सीने में ही दफ़न करते हुए बोलने लगा, ''हैल्लो-हैल्लो. माइक टेश्टिंग. हां, ठीक है. सभी जन कृपा स्थान ग्रहण कर लें. आपसे पहले भी कहा था कि चूने की लकीर से आगे न आयें. जिस किसी को भी परेशानी हुई है उसके लिए हमें खेद हैं. मंत्री जी पधार चुके हैं, कृपया शांत रहे.''

हेलिकॉप्टर के रहस्यमयी दरवाज़े में से पांच-सात जन उतरे. नायिका के खुले बालों को देखकर लौंडों ने, अपनी हालत पर चूना पुत जाने के बाद भी, सीटियां हवा में छोड़ीं.

मंत्री जी ने जल्दी ही माइक संभाल लिया और संवाद प्रसारित किये, ''भाइयो और बहनो! जय हिंद! सबसे पहले मैं आप सभी का हार्दिक धन्यवाद करता हूं कि बड़ी संख्या में आकर आपने हमारे विश्वास को क़ायम रखा है. अब मैं अपने साथ आये गण्य-मान्य व्यक्तियों का परिचय कराना चाहता हूं. ये हैं श्री गोपाल जी, दिल्ली में एक बड़ी सामाजिक संस्था के संचालक हैं. इनकी संस्था ने देश के कई बेसहारा बच्चों को संभाला है. और ये हैं श्री त्रिवेदी जी, एक वरिष्ठ पत्रकार हैं. इन्होंने ही पिछले वर्ष सरकारी घोटालों का भंडाफोड़ किया था. और मेरी दांयी ओर हैं टीवी जगत के मशहूर अभिनेता श्री सुमित राणा तथा उनके साथ खड़ी हैं टीवी अभिनेत्री मनीषा जी. पिछले दो वर्षों से इन्होंने टीवी जगत के माध्यम से अपनी सेवाएं देश को समर्पित की हैं. परंतु मैंने जैसे ही आपके तथा इस गांव के विषय में इन्हें बताया, तो ये दोनों कलाकार इस गांव में आप सभी से मिलने के लिए आतुर हो गये तथा अपने व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकालकर यहां आये. कृपया इनका स्वागत कीजिए.''

फीकी तालियों से स्वागत हुआ.

मंत्री जी के शब्द बल्लू मिस्त्री के लिए किसी आघात के समान थे. लौंडों की तो जैसे सारी ऊर्जा धूल में उड़ गयी.

''मैं जानता हूं कि इस समय गांव में पानी एक गंभीर समस्या है. जैसा कि आप जानते हैं कि शुद्ध पानी उपलब्ध कराना सरकार की ज़िम्मेदारी होती है, परंतु वर्तमान सरकार ने आपके हितों के लिए कुछ नहीं किया. ये जो पानी आप पी रहे हैं यह भी शुद्ध नहीं है. यहां आये विज्ञान पढ़ने वाले छात्र जानते होंगे कि पानी में ऑक्सिजन तथा हाइडोजन दो गैसें पायी जाती हैं तथा दोनों ही गैसें अति ज्वलनशील होती हैं. परंतु वर्तमान सरकार ने अपने लाभ के लिए इनका प्रयोग बिजली बनाने में किया है. पानी की सारी ऊर्जा निकालने के बाद इसे नदी में छोड़ा जा रहा है. लोगों में जितनी भी पेट की बीमारियां हैं, इसी कारण हो रही हैं. सरकार ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया है, न बिजली दी, न स्वास्थ्य सुविधाएं, पानी के नाम पर भी छल किया है आपसे. मैं आपसे वोट मांगने नहीं, बल्कि अपनी शक्ति मांगने आया हूं. ऑक्सिजन के समान मैं एक शक्ति हूं तथा हाइड्रोजन के समान आप एक शक्ति हैं, हम दोनों यदि मिल जायें तो एक नये रूप की बड़ी शक्ति बन जायेंगे. मैं आपको वचन देता हूं कि यदि हमारी सरकार सत्ता में आती है तो मैं शुद्ध पानी, बिजली, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि इस गांव में मुहैया करा दूंगा.''

नेताजी के शब्द भी उस भयानक दिव्य उड़न-मशीन के समान ही सुननेवालों के हृदय में उतर गये. सांय-सांय करता हुआ उनके भीतर भी बवंडर उठा. उन्हें नेता जी आकाश से उतरे हुए नबी ही लगे जो ईश्वर का पैग़ाम मनुष्य जाति के लिए लाये थे. पानी का नाम सुनते ही सबके गले तर हो उठे और उन्होंने उम्मीद की पुड़िया में लिपटा एक-एक सूखा घूंट गले के नीचे उतार दिया.

लौंड़ों को इस बात में कोई रुचि नहीं थी कि पानी किन-किन गैसों से मिलकर बना है तथा आने वाले समय में घर-घर सुविधाएं उपलब्ध करायी जायेंगी. मल्लिका के न आने का रोष उनमें व्याप्त होता जा रहा था. सवाल यह था कि उन्हें बेवक़ूफ़ बनाने में किसका हाथ है? उनका वश किसी पर नहीं चला तो बात नंदू पर आ टिकी कि उसी ने अख़बार बांटते समय जन-जन को यह घोषणा सुनाई थी कि मल्लिका और गोविंदा इस आयोजन का आकर्षण होंगे.

दसवीं में तीन बार फ़ेल हो चुके बनारस दास ने आज यह मान लिया कि नेता जी मात्र राजनैतिक व्यक्ति ही नहीं हैं, अपितु एक महान् वैज्ञानिक भी हैं जिन्होंने पानी के दो तत्वों के बारे में बता डाला था.

नेता जी चीख़े जा रहे थे, ''आज के समय में विदेशी ख़तरा हमारे लिए सबसे बड़ी चिंता का विषय है. एटमी हथियारों की होड़ ने ऐसी परिस्थितियां पैदा कर डाली हैं. ऐसे में मैं आपको आश्वासन देता हूं कि आपकी सुरक्षा करना मेरी प्राथमिकता रहेगी. आपको न्याय दिलाने के लिए मैं सदा तत्पर रहूंगा. आपकी आवश्यकता को अपनी समझकर पूरी करूंगा. आपका सम्मान करना मैं अपना सम्मान समझूंगा. आपके व्यक्तिगत दुःख को दूर करना अपना परम कर्तव्य मानूंगा.''

ये सब बातें उन्होंने स्पीकर की चिपड़-चूं से संघर्ष करने के दौरान पसीना बहाते हुए कहीं.

दूसरी ओर लड़के नंदू से अपनी परेशानी को लेकर उलझे हुए थे.

किसी ने उसका थैला खींचते हुए कहा, ''क्यों बे, तू तो बड़ा चीख़-चीख़ कर बोल रहा था, तेरी मां आयी तो नहीं.''

तीस वर्ष का मानसिक रोगी नंदू, दस वर्ष के बच्चे के समान, मुंह लटकाये खड़ा हो गया.

कोई दूसरा बोला, ''इसे पैदा करने के बाद अपने यार के साथ भाग गयी, इसीलिए नहीं आयी.''

तीसरे ने उसकी गर्दन पर एक छोटी चपक धरते हुए पूछा, ''तुझे कहा किसने था कि वो हेलिकॉप्टर में बैठकर आयेंगे?''

''किशोर भाई ने.'' अपने अख़बार-मालिक का हवाला देते हुए उसने स्पष्ट कर दिया.

''तेरे किशोर भाई को किसने कहा था?''

नंदू चुप था, क्योंकि वह नहीं जाता था.

''इसके बाप ने फ़ोन किया होगा किशोर भाई को. क्यों?''

वह चुप रुआंसी आंखें लिये ख़ाली हवा में देखता रहा.

तभी किसी ने कहा, ''ये तो उस दिन अख़बार में से पढ़कर बोल रहा था, वहीं लिखा होगा, हैं न?''

नंदू अपनी अनभिज्ञता लिये हुए बेचैन था.

''तूने झूठ क्यों कहा?' किसी ने पूछा.

''मैंने झूठ नहीं कहा.'' नंदू बोला

''चुप, हराम के! तू गांव में झूठी ख़बरें फैलाता है और नाम दूसरों का लगाता है! चल, किशोर भाई से पुछवायें?''

नंदू चुप लगा गया, क्योंकि पहले भी ऐसा हो चुका था कि किशोर उसकी हंसी उड़वाने के लिए उसे झूठा ठहरा देता था और उस पर हंसता था.

''अब चुप क्यों हो गया?''

''तुम चौरंगी से पूछ लो, वह भी उस दिन यही कहने दुकान पर आया था.'' नंदू ने पछता कर कहा.

''तेरे कहने का मतलब है कि चौरंगी ने झूठ कहलवाया?''

''मुझे क्या पता!''

''तुझे नहीं पता तो फिर किसे पता है?''

नंदू को नेता जी का भाषण सुनकर विश्वास हो गया था कि वह झूठ नहीं बोलेंगे और उन्होंने नागरिकों की सुरक्ष ाकरने का वचन भी दिया था. इसी को अपना बल बनाते हुए वह बोल दिया, ''नेताजी ने कहा होगा चौरंगी को, चाहो तो पूछ लो.''

एक ने उसके टख़नों में ठोकर मारते हुए कहा, ''झूठे, किसी ने नहीं कहा, तू ने अपनी तरफ़ से बोला था.''

उसने रुआंसे स्वर में कहा, ''जब मैं कल तुम्हारे स्कूल हेडमास्टर जी से अख़बार के पैसे लेने आऊंगा, तब सब की शिकायत करूंगा.''

इसी बात पर एक लौंडे ने उसके कंधों को झिंझोड़ते हुए कहा, ''तू सब की शिकायत करेगा? एक तो झूठ बोलता है और ऊपर से रौब झाड़ता है! मास्टर जी तेरी मानेंगे ही नहीं, अब तो उन्हें भी विश्वास हो गया है कि तू झूठ ही बोलता है. उल्टा तेरी ही पिटाई हो जायेगी.''

इन शब्दों ने उसकी कमर तोड़ डाली थी.

लड़कों ने उसका थैला, जो घुटनों से नीचे तक लटका रहता था, खींचना आरंभ कर दिया.

देखते ही देखते लड़कों ने उसके थैले के सभी अख़बारों को हवा में खोल-खोलकर बिखेर दिया. नंदू किसी असहाय हिरनी के समान कभी एक अख़बार को समेटता कभी दूसरे को. लेकिन लड़कों ने उसके प्रयास को सफल नहीं होने दिया.

उसने अंत में मारने के लिए पत्थर उठा लिया, जबकि वह अकसर ऐसा नहीं करता था.

लड़कों ने कहा, ''स्साले, पत्थर मारेगा तो यहीं ज़मीन में गाड़ देंगे.''

वह डर गया. किसी ने पीछे से आकर उसकी पैंट नीचे खींच दी. वह परेशान हो उठा. किसी ने धक्का दिया. इसी बीच उसके भीतर उबाल उठा जिसमें वह अश्लील गाली देकर बोला, ''तुम सब की शिकायत मंत्री जी से अभी करके आता हूं.''

लड़के हंसने लगे.

किसी ने कहा, ''वहां मत जाना, मंत्री जी तुझे पेल देंगे, समझा!''

नंदू ने झुंझलाहट में अपनी चप्पलें इधर-उधर फेंक दीं. ख़ाली थैला ज़मीन पर पटक दिया और कच्ची सड़क पर भागता हुआ वहीं जाने को हुआ जहां मंत्री जी ने भाषण दिया था. परंतु स्टेज ख़ाली था. मैदान के बीचो-बीच वही काला भंवरा अपने डैने हवा में गोल-गोल छितरा रहा था. नंदू उसी ओर भागा. चंद लोग उसे अवाक़ देख रहे थे. इससे पहले कि वह नज़दीक पहुंचता, हवा के तेज़ झोंके ने उसे ज़मीन पर पटक दिया और देखते ही देखते काले बवंडर ने ज़मीन छोड़ दी.

नंदू ज़मीन पर धूल-धूसरित लोटने लगा. वह चीख़ा, चिंघाड़ा परंतु हेलिकॉप्टर के शोर में उसकी आवाज़ दबी की दबी रह गयी. उसने देखा हि हेलिकॉप्टर के भीतर से झांकते हुए लोग भी किशोर भाई के समान ही उस पर हंस रहे थे और बोतल में मुंह लगाकर पानी पी रहे थे.

पल भर में ही आकाश उस मशीन को निगल गया.

नंदू के मुंह से एक अश्लील गाली मंत्री जी के लिए भी निकली, क्योंकि अंत में यही एक सुख था जो उसके पास रह जाता था.

सलान गांव,पो.ऑ.भगवंतपुर,
देहरादून-२४८००९ (उ.खं.)
मो.-९७६०३३९६३२

कहानी

कस्तूरी

उसे छोटा-सा अनुभव था, मेट्रो के सफर का. आज फिर जबरन उसे मेट्रो से ही जाना पड़ रहा था. वो पूर्व स्मृति और अनुमान के आधार पर प्लेटफॉर्म ढूंढ़ते हुए लगभग ठीक जगह पर आ खड़ी हुई. तो ट्रेन की दिशा को और अधिक पक्का करना चाहती थी. वहां लिखे संकेतों और अविराम घोषणाओं पर उसे रत्तीभर भी यक़ीन नहीं था. वो बहुत प्रयास के बाद झिझकती हुई साथ ही खड़ी महिला से बोली, 'शाहदरे की तरफ यहीं से जायेगी?'

महिला ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा, वो कुछ हैरान थी लेकिन अधिक प्रतिक्रिया न कर, जवाब में हल्की-सी 'हूं' कर दी.

कस्तूरी को लगा वहां अधिक कुछ बोलने की गुंजाइश नहीं थी लिहाजा वो चुप हो गयी लेकिन ट्रेन की दिशा के बाबत निश्चिंत हो गयी थी.

न जाने क्यों उसे मेट्रो के ताने-बाने से भय लगता, इतना भव्य, करीने से की गयी साफ़-सफ़ाई, दूर लंबाई तक फैला चम-चमाता फ़र्श और एक सघन सूनापन हर वक़्त यहां घूमता रहता महसूस किया जा सकता था. किसी भी चीज़ को छूने की हिम्मत नहीं होती थी और अगर छू भी लिया तो कोई देख रहा होगा का डर जो दिल के कोने में दुबका होता, वो बाहर की ओर झांकने लगता. यहां कोई भी स्वाभाविक नहीं रह पाता, हर कोई बनावटी हरकतें करने लगता. यहां हर तरफ तरह-तरह की निर्देश पट्टिकाएं लगी थीं - कूड़ा यहां डालें. ख़तरा! ४४० वोल्ट! आगे न जायें आदि, आदि. और उससे भी अधिक ऊल-जलूल घोषणाओं ने मानो नियम-क़ानून की किताब ही खोल दी हो - लावारिस वस्तु को न छुयें. पीली रेखा के पीछे रहें. संदिग्ध व्यक्ति की सूचना तुरंत दें. यह न करें, वो न करें. और न जाने कैसे-कैसे स्वतंत्रता और संवाद पर मानसिक अंकुश लगे हुए थे. आदमी, आदमी की निग़ाह में संदिग्ध था. किसी न किसी अपराध बोध में दबा हुआ.

वह आंखें फाड़कर कभी प्लेटफॉर्म की छत देखने लगती, कभी इधर-उधर खड़े लोगों को पहचानने की कोशिश करती. यहां पहुंच कर उसकी धड़कनें तेज़ हो जातीं, ऐसा लगता मानो वह कब सीमा लांघकर किसी पराये देश में पहुंच गयी हो. जहां उसे कोई नहीं जानता! उसे संकरी गलियों के छोटे-छोटे मकानों में रहने की आदत थी, हर पल कोई न कोई बात करने को चाहिए होता, बिन बोले उसका गुज़ारा नहीं था. वो जब बात करती तो गली के एक किनारे से दूसरे किनारे तक सुनाई देता. लोग तो यहां भी थे लेकिन सब चुप-चाप, खिंचें -खिंचे और अलग-थलग. स्थितिजन्य तनाव से थोड़ी ही देर में एक वजन-सा उसके दिलो-दिमाग पर तारी हो गया. उसका जी घबराने लगा और धड़कनों की गति तेज़ हो गयी. इन सभी से बचने के लिए वह ट्रेन के आने वाली दिशा में देखने लगी. प्लेटफॉर्म के नीचे की सड़क पर दौड़ते ट्रैफिक का शोर पहाड़ी नदी-सा सुनाई दे रहा था. वहीं सामने, मेट्रो की पटरी गुमसुम, उदासीन, बेजान पड़ी थी. वह अब पटरी के साथ-साथ दूर क्षितिज तक देख रही थी.

।। गजेंद्र रावत ।।

□

विवाह के एक साल बाद वह शहर की अनधिकृत कॉलोनी में आयी. अनेक विरोधाभास होने के बावजूद शहरी मोहल्लेदारी में घुल-मिल गयी. यद्यपि उस छोटे से मकान में घुसते हुए ही माधव ने कहा था, 'ये शहर है कस्तू!' यहां हर तरह के लोग होते हैं अच्छे बुरे...देखभाल के बात करनी होती है. न जाने कौन कैसा है? ये सब ध्यान रखना ज़रूरी है. यह गांव नहीं है कि कोई चाचा है, कोई ताऊ.....और हां यहां धीरे बोलना सीख ले, आवाज़ घर से बाहर नहीं जानी चाहिए. देखो भई! जैसा देश वैसा भेष.'

...लेकिन हुआ इसके ठीक उलट! माधव मुंह अंधेरे काम पर निकल जाता और दिन-दोपहरी से ही कस्तूरी की आवाज़ बेरोक-टोक गली में विचरती रहती. उसके लिए कोई भी बात गोपनीय या कानों में कही जाने वाली नहीं होती थी. उसे जो भी कहना होता वो सरेआम कहती, सबको सुनाकर. जिस दिन कस्तूरी कहीं गयी होती तो सबकी जबान पर एक ही सवाल चढ़ा होता - कस्तूरी कहां गयी? उसकी आवाज़ नहीं आ रही. सभी के कान रात-दिन उसकी आवाज़ के आदी हो चले थे.

गली के किसी भी घर में कोई भी आयोजन हो, शादी-ब्याह या जन्मदिन कस्तूरी की जबान कभी हलवाइयों पर दनादन

बरस रही होती, कभी टेंट वालों को उनके बद-इंतजामी पर बुरा-भला कह रही होती. कहीं किसी को हारी-बीमारी हो तो अस्पताल जाने में कभी उसके पांव नहीं थके, वह सबसे पहले मरीज के सिरहाने पहुंचती. छोटी-छोटी बातें, किसी का गैस सिलिंडर ख़त्म हो जाय तो इसकी सूचना भी उसकी आवाज़ में गली भर में समांतर फैल जाती. निसंदेह कहा जा सकता है कि वहां रहने वाले लोग-बाग पूरी तरह निर्भर थे कस्तूरी और उसकी कभी चुप न रहने वाली जबान पर.

ट्रेन किसी अजगर की तरह रेंगती हुई प्लेटफॉर्म पर आ खड़ी हुई. उसकी आहट भर से दूर तक छिटके लोग यंत्रवत् खिंचते हुए ट्रेन के दरवाज़ों तक पहुंच गये.

भीतर डिब्बे में लोग छितरे-छितरे खड़े थे. बस, प्रवेश द्वार पर कुछ लोग जमघट लगाये खड़े थे. वहीं दरवाज़े के एक तरफ तीन लड़के और एक लड़की जो उनके बीचों बीच एक मोटी सी किताब दोनों हाथों में खोले खड़ी थी किसी बहस में उलझे थे. लंबा लड़का उंगली से किताब के खुले पेज़ को ठोक-ठोक कर उत्तेजित हो रहा था. बहस करते-करते वे ऐसे गुम हो जाते कि लड़की उनके बीच अदृश्य हो जाती. उसी दरवाज़े के दूसरी छोर पर दरबान की तरह तनकर एक बूढ़ा सरदार खड़ा था, उसकी दूधिया दाढ़ी छाती को ढक रही थी. वह बार-बार दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बाहर, प्लेटफॉर्म पर होती हलचल को देख रहा था.

बंद रहने वाले दूसरे दरवाज़े पर एक लंबे बालों वाला लड़का पीठ किये खड़ा था. उसके बालों पर रबड़ चढ़ी हुई थी और बालों की पोनी-टेल शरीर की गति के साथ-साथ ऊपर नीचे हिलती थी. उसके एक कान में छोटी-सी बाली लटकी हुई थी और दोनों कानों में मोबाइल की लीड ठुसी हुई थी. वह शीशे से चिपका दूर विराने में सफेद फूले कांसे को देख रहा था.

डिब्बे में दोनों ओर सीटों पर लोग बैठे थे, एकदम बुत से. बिना हिले डुले! मानसिक उलझनों से दबे, उदास, खामोश और आंखें बंद किये बैठे थे. कुछेक चेहरों के सामने अख़बार फैला हुआ था. ट्रेन चलने पर फिर से भीतरी घोषणाओं का सिलसिला शुरू हो गया. घोषणाएं आंखें बंद किये लोगों के कानों में घुसकर दिमाग पर बिंध रही थीं - अनजान से दोस्ती न करें! संदिग्ध व्यक्ति की सूचना तुरंत दें.

कस्तूरी दरवाज़े की भीड़ लांघकर सीटों की पंक्तियों के बीच छत से लटकते हैंडल पकड़कर खड़ी हो गयी. वह लोहे की रॉड पर सिर टिकाकर दरवाज़े की एक तरफ खड़े उन चारों को देखने लगी. फिर अपने आप से बोली, 'कौन होगी यह लड़की

राजेंद्र रावत

२५ अक्तूबर १९५८, नयी दिल्ली

लेखन : कुछेक प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में कहानी, कविता, लेख आदि प्रकाशित.

संप्रति : अस्पताल में सरकारी नौकरी, स्वतंत्रलेखन

इनके साथ? शायद साथ-साथ पढ़ते होंगे ये लोग...' इस प्रक्रिया में वह शब्दों के साथ अपने हिलते होठों को नहीं रोक सकी. तो थोड़ी झेप गयी. कोई क्या सोचेगा?

कुछ देर बाहर देखने के बाद, वह फिर उनकी तरफ देखने लगी. वह उनसे बात करना चाहती थी - तुम लोग क्या करते हो? क्या पढ़ते हो?....और यह लड़की कौन है? वो भावविभोर होकर लड़की की ओर ताके जा रही थी लेकिन वो चारों अपनी बहस में उसी तरह व्यस्त थे जैसे पहले.

किसी की ओर अधिक नहीं देखना चाहिए यह सोच वो लंबी सीट पर बैठे लोगों को देखने लगी. ...ये वही लोग हैं उदास, गूंगे....ये किसी से आंख भी नहीं मिलाते, कहीं बात न करनी पड़ जाय! उसने सोचा.

उसे याद आया, घर से निकलते समय देहरी पर खड़े होकर माधव ने कहा था, 'मेट्रो से ही जाना. बस की धक्का मुक्की से तो बचेगी.'

'नहीं, नहीं मैं मेट्रो से नहीं जाऊंगी!' वो लगभग चिल्लाई थी.

'अरे वो बिल्कुल घर के आगे उतरती है...बस पांच मिनट ही पैदल चलना पड़ता है.' माधव जोर देकर बोला था.

'वह सब तो ठीक है लेकिन मुझे मेट्रो के लोग अच्छे नहीं लगते.' वो मुंह बनाकर बोली, 'मुंह फुलाये रहते हैं हमेशा!'

'अरे लोग तो एक ही हैं, बस में भी वही जाते हैं, वहां भीड़ में बुरा हाल हो जायेगा....और फिर घर के लिए कितना पैदल चलना पड़ता है....मेट्रो से ही जाओ.'

'ओहो. मेट्रो.' वो बोली थी और पैर पटकती हुई स्टेशन

की ओर चल दी थी.

□

डिब्बे में अचानक मची अफरा-तफरी से उसका ध्यान बंटा. गेट के समीप खड़े सभी लोग पीछे हटने लगे, मानो कोई लहर पीछे की ओर चली आ रही हो. लोग पीछे हटते-हटते कस्तूरी तक आ पहुंचे. वहां, गेट से सटा बूढ़ा सरदार चक्कर खाकर पीछे की ओर गिर पड़ा. सब लोग बूढ़े के गिरने से घिरी जगह को छोड़कर तेज़ी से पीछे की ओर हट गये थे, कहीं गिरते हुए बूढ़े का कोई अंग उन्हें न छू जाय. कस्तूरी ने कौतुकवश दो लोगों के बीच से देखा, बूढ़ा फ़र्श पर गिर चुका था. बूढ़े के सामने के लोग गेट के दूसरी ओर सिमट गये, कुछ देर तो भौंचक्के होकर नीचे गिरे बूढ़े को तकते रहे लेकिन थोड़ी ही देर में सामान्य होकर सबने नज़रें फेर लीं और बाहर की ओर मुंह घुमा लिया.

लोगों को हटाकर कस्तूरी बूढ़े की ओर लपकी. पर वो बेसुध पड़ा था. उसकी पगड़ी एक तरफ की सीट के नीचे लुढ़ककर पहुंच गयी थी. सीट पर बैठे लोगों ने सिर्फ पगड़ी के स्थान से अपने पांव दूसरी ओर मोड़ लिये थे. बालों में लगा कंघा दूर फ़र्श तक छिटक गया था.

वह बूढ़े के चेहरे के नजदीक बैठकर पल्लू से हवा करती हुई उसकी ठोढ़ी हिलाते हुए बोली, 'क्या हुआ बाबा?'

बूढ़े की आंखें पलटी हुई थीं. सफ़ेद दाढ़ी छाती पर बिछी हुई थी. कस्तूरी ने बूढ़े के पांवों की तरफ खड़े उन चारों को बड़ी हसरत भरी निगाहों से देखा. उन्होंने बहस रोक दी थी. लंबा लड़का कनखियों से देखता हुआ धीरे से दूसरे के कान में बोला, 'लगता है, शुगर लेबल डाउन हो गया है इसका.'

कस्तूरी ने बूढ़े को बाजू से हिलाते हुए कहा, 'उठो बाबा क्या हो गया है?.....अरे कोई देखे, बेचारे बूढ़े को.' वह अभी भी उन चारों की ओर देख रही थी. वे अब धीरे-धीरे बातें करने लगे थे.

थोड़ी ही देर में बूढ़े को होश आ गया उसने आंखें खोल लीं. वह अब हर तरफ देख रहा था, जगह पहचानने की कोशिश कर रहा था, फ़र्श पर सामने बैठी कस्तूरी पर उसकी आंखें ठहर गयीं. वो पस्त-सा सहारा लेकर बैठ गया और इशारे से पगड़ी के लिए हाथ हिलाया. कस्तूरी उसे वहीं बिठाकर पीछे की सीट के नीचे पगड़ी उठाने झुकी, बैठे लोगों ने अपनी टांगें दूसरी ओर हटा लीं.

'पत्थर बने बैठे हैं...इन्सानियत नहीं रह गयी ?' वह पगड़ी के खुले हिस्से को समेटते हुए बोली. हवा में उछले तीर से शब्दों से डरकर लोगों ने सिर बाहर की ओर घुमा लिया. पुल के नीचे यमुना का पानी एक सुरमई पट्टी सा दिखाई दे रहा था और दोनों ओर उजाड़, वीरान..... और रेत उड़ रही थी.

पगड़ी बूढ़े की गोद में पड़ी थी. वह अपने बालों को बांधने लगा, फिर पगड़ी पहनते हुए पांव की तरफ पड़े बैग की ओर इशारा किया. कस्तूरी ने बैग को बूढ़े तक खींच दिया. उसने बैग से कुछ गोलियां निकालकर मुंह में रख लीं.

दूसरे दरवाज़े से चिपका लंबे बालों वाला लड़का जो कानों में मोबाइल की लीड डाले हुए था, वो भीतर की किसी भी गतिविधि से अनजान बाहर आकाश पर नज़रें गड़ाये था, अचानक ही झूमने लगा. सभी का ध्यान उस ओर खिंच गया. वह हाथों को ऊपर उठाकर कमर को दायें बायें मटका रहा था. सभी अचंभित उसे देखने लगे.

अगले स्टेशन पर काफ़ी लोग उतर गये, वे चारों भी. एक युगल चढ़ा और वहीं दरवाज़े से सटकर खड़ा हो गया. वे एक दूसरे से इतने अधिक सटे हुए थे, सिर्फ हवा की पतली सी परत उन दोनों के चेहरों के बीच थी. लड़के का कद ऊंचा था इसलिए वह लड़की के चेहरे पर झुका हुआ था.

ट्रेन चल पड़ी. सीटें लगभग खाली थीं.

'चलो बाबा ऊपर बैठ जाओ. कहां तक जाना है आपको ?' कस्तूरी ने बाजू पकड़कर बूढ़े को किनारे वाली सीट पर सहारा देकर बैठा दिया. बूढ़े ने सीट पर बैठकर अपना बदन ढीला छोड़ दिया लेकिन कुछ बोला नहीं.

'ये लोग इंसान नहीं हैं..... ये समझते हैं इन पर कभी कोई मुसीबत नहीं आयेगी. अरे अच्छा बुरा वक़्त सबका आता है.....!' वो अभी भी खड़ी थी और बिना रुके बोले जा रही थी. 'सबने होना है बूढ़ा....हमेशा जवान तो रहेगा नहीं कोई भी....' उसका चेहरा तन गया था और आंखें लाल सुर्ख हो गयी थीं.

प्रेमी युगल उसी तरह सटकर खड़ा था. लड़की ने धीरे से लड़के के कान से मुंह जोड़कर कहा, 'क्या कह रही है औरत?'

'छोड़ न ! पागल है.' लड़का लापरवाही से बोला.

बूढ़े और लड़के के बीच सिर्फ़ एक शीशे का अंतर था. लड़के के शब्द पिघले सीसे की तरह उसके कानों तक पहुंच गये. बूढ़े ने गरदन घुमाकर लड़के की ओर देखा और आंखें मूंद लीं. जब आंखें खोलीं तो आंसू की चार बूंदें आंखों की गोलाकार परिधि लांघते, लुढ़कते हुए दाढ़ी पर आ गिरीं और वहीं समा गयीं.

अब ख़ामोशी में, ट्रेन की आवाज़ सुनाई दे रही थी, कस्तूरी थककर बिल्कुल चुप थी.

डब्ल्यू पी-३३सी, पीतम पुरा,
दिल्ली- ११००३४
मो : ९९७१०१७१३६

कीड़े

अमरय्या मुंह अंधेरे पांच बजे नींद से जाग उठा. यूं कहना ज़्यादा सही होगा कि वह बिस्तर से उठकर बैठ गया. दरअसल नींद से जागने का प्रश्न तभी तो पैदा होगा न जब नींद के नाम पर थोड़ी-सी भी झपकी आये. उसकी तो ज़िंदगी ही बिलकुल कच्ची नींद जैसी हो गयी थी.

राजम्मा भी तभी नींद से जागी थी. उसने आंखें मलकर अपने पति को देखा जो खटिया पर अपने घुटनों को हाथों के बीच समेटकर कठपुतले की तरह बैठा था. उसकी ओर देखते हुए वह समझ गयी कि वह किसी गहरी सोच में डूबा हुआ है. कुछ दिनों से वहां यही प्रक्रिया चल रही थी.

थोड़ा-सा आराम करने के लिए चटाई पर पसरी हुई राजम्मा को खटिया की बग़ल में रखे हुए केरोसीन के दीये की रोशनी में अपने पति की परछाई दीवार पर दिख रही थी. जब भी उसकी नींद टूटती, उसके सामने लकड़ी के खंभे की छाया में निश्चल होकर समाया हुआ या सोने का प्रयास करते हुए करवटें बदल रहे उसके पति का आकार छाया की तरह आभास देता रहता था.

वह जानती थी कि किस प्रकार के दुख-दर्द और ज़िम्मेदारियों ने उसके पति की हालत बेतरह बिगाड़ रखी थी. उसका मन करता कि वह अपने व्याकुल पति को कुछ कहकर सांत्वना दे, ढांढ़स बंधाये. लेकिन जीवन की आपाधापी में जवाब दे रहे आत्मविश्वास को सहारा देने के लिए परिस्थितियां कुछ भी अनुकूल नहीं थीं.

पति की दीनता को देखकर मन ही मन परेशान हो रही राजम्मा के आंसू उसकी आंखों में ही सूख रहे थे.

''अभी से क्यों उठ रहे हो? थोड़ी देर और सो लेते।'' बाहर आकर उसने पति से कहा.

पत्नी की बात सुनकर अमरय्या ने केवल आंख उठाकर उसकी ओर देखा, पर कुछ भी नहीं कहा. राजम्मा दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल आयी.

उसने आंगन में झाड़ू-बुहारी की, गोबर मिले पानी का छिड़काव किया, फिर रंगोली बनायी. तब तक सुबह हो चली थी. एक-एक करके लोग नींद से उठ रहे थे. हर कोई व्यक्ति कुछ न कुछ काम कर रहा था. बच्चे तो धूप चढ़ने से पहले नहीं उठते थे.

बड़ा लड़का कांवर से तालाब का पानी लाकर दे रहा था. अमरय्या बाहर के चबूतरे पर बैठा था. जले हुए एक उपले की राख से उसने मंजन कर लिया, फिर हाथ-मुंह धो लिया.

रसोईघर में एक पीढ़ा लेकर उस पर धम्म से बैठे हुए अमरय्या को देखते ही राजम्मा ने भांप लिया कि उसका इरादा खेत जाने का है. खेत पर जाने से पहले रात का बचा हुआ दो-चार कौर भात खा लेना उसके लिए आम बात थी.

आदतन उसने पति के सामने थाली रखी, पानी का गिलास भी रखा. खाना परोसने के लिए उसने मिट्टी के बर्तन का ढक्कन खोलकर देखा तो उसका दिल धक्क से रह गया. उसमें मुट्ठी भर भी भात नहीं था.

॥ वल्लूरु शिवप्रसाद ॥

नींद से उठते ही भूख से बच्चे ऊधम मचाते हैं. कुछ खा-पीकर वे स्कूल जाते तो फिर वहां से बारह बजने के बाद ही लौटते. जो थोड़ा भात बचा भी है, अगर अपने मर्द को ही खिला दे तो उन शैतान बच्चों को वह कैसे चुप करा सकेगी?

तीन दिन पहले ही उसने बड़े बेटे से कहा था कि कहीं से भी उधार लेकर एक बोरा भर धान चक्की पर पिसवाकर चावल ला दे.

उसने देखा तो मिट्टी के बर्तन में थोड़ा-सा गाढ़ा मट्ठा बचा हुआ था. उसी में उसने दो गिलास पानी मिला दिया और एक गिलास पति को दिया. उसने बिना कुछ कहे चुपचाप गिलास हाथ में लिया.

''कल ही चावल ख़तम हो गये थे. भात बच्चों के लिए भी काफ़ी नहीं है. बड़ा तो तीन दिन से सारे गांव में कोशिश करता फिर रहा है. बहुत ही ना-नूं करके आख़िर कल शाम को चिन्नय्या ने एक बोरा भर धान दिया है. पिसवाने के लिए चक्की पर ले गये तो वहां बिजली गुल हो गयी थी. चक्कीवाले ने कहा था, सवेरे आओ तो हो जायेगा.'' अमरय्या के न पूछने पर भी उसने बता दिया.

अमरय्या ने मट्ठा गले से नीचे उतारकर गिलास पत्नी को पकड़ा दिया और बाहर निकल आया.

रखी हुई थाली को वैसी ही उठाते हुए राजम्मा की आंखें

भर आयीं. पिछले चार-पांच सालों से तंगी तो ज़रूर रही थी, पर ऐसी बुरी हालत पहले कभी नहीं थी.

दस साल पहले की उस घर की रौनक अचानक उसकी आंखों के सामने उभर गयी. पूरे साल भर घर अनाज से भरा-पूरा रहता था और यहां तक कि उसमें लगे कीड़ों की मौजूदगी का भी एहसास होता था. दूध और दही की भीनी-भीनी गंध से रसोईघर महक उठता था. मवेशियों के झुंड से भरे पिछवाड़े में गोबर की बास और हरी घास की महक भी एकसाथ आती थी.

अब तो न वह फ़सल रही और न ही वह पशुधन. घर और पिछवाड़ा..... जहां भी देखो, सब जगह सिर्फ मिट्टी की बू ही शेष रह गयी थी.

□

गांव के किसानों के चेहरे एकदम यूं पीले पड़ गये थे, मानो कीड़े लगे हुए पत्ते हों. हर डाल पर, हर फूल में....जहां भी देखो वहां कीड़े पड़े हुए थे. कपास के पौधों में ख़ूब झुंड के झुंड हरे रंग के कीड़े पड़ गये थे. उनके कारण सोने जैसे फूल टूटकर ज़मीन पर झड़ रहे थे.

पिछले तीन साल से वे टकटकी लगाये देखते आ रहे थे. हर साल यही आस लगी रहती कि इस दुर्दशा से अब की बार उबर जायेंगे, परंतु नैया किनारे लगने के कोई आसार नज़र नहीं आ रहे थे. बुआई के दिन से लेकर डोंडे से रुई निकालने तक सब ख़तरे ही ख़तरे थे. समय पर वर्षा नहीं होती थी. कभी-कभार कुछ बारिश हो भी जाती तो पैदावार नाम मात्र की ही होती. जो कुछ उपज होती उसका भी उचित भाव नहीं मिलता. क़र्ज-वर्ज लेकर लगायी गयी पूंजी चक्रवात में धूल की तरह उड़ जाती. गांव में ऐसा कोई किसान नहीं था जिसे अपनी खेती से कुछ आमदनी हुई हो या जिसने कहीं कुछ उधार नहीं लिया हो.

उस साल हालत बहुत ही ख़राब थी. वर्षा ठीक से न होने के कारण बोया हुआ बीज निष्प्राण हो गया था. अगली वर्षा के बाद फिर बीज बोया गया जिससे अंकुर फूटा था. छोटे पौधे उगकर अच्छी तरह बढ़ गये थे जिनमें फूल भी निकले थे, पर फल बनते-बनते उन पर कीड़ा लग गया था. किसानों ने सैकड़ों रुपये क़र्ज लेकर कीटनाशक दवा का अंधाधुंध छिड़काव कर दिया था. लेकिन कोई फ़ायदा नहीं रहा.

पैसा उधार मिलना अब बिलकुल कठिन हो गया था. घर की औरतों के गले के मंगलसूत्र या उनकी सोने की चूड़ियां गिरवी रखकर कुछ पैसा लिया भी जाता, तो भी नुक़सान का अंदेशा मुंह बाये खड़ा था. सो सबके सब किसान हाथ पर हाथ धरे बैठे हुए थे. एक एकड़ के लिए एक क्विंटल और ज़्यादा से ज़्यादा दो क्विंटल की पैदावार का ही अंदाज़ा लगाकर वे एकदम निराश हो उठे थे.

अचानक अप्रत्याशित ढंग से कपास का भाव दुगुना हो उठा और उसने किसानों की बुझती हुई आशा के दीये को प्रज्वलित कर दिया. वे लोग अब बेताब हो उठे कि कीड़ों से छुटकारा पाकर एक या दो क्विंटल अधिक पैदावार प्राप्त कर सकें तो सारे ख़र्चे निकालकर दस-बीस रुपये हाथ में बचेंगे. घर की औरतों के शरीर पर बचा-खुचा सोना उतारकर वे उसकी ज़मानत पर जहां कहीं भी उधार मिलने की उम्मीद थी, वहां पहुंच गये. जिनके पास सोना-वोना कुछ भी नहीं था, उन्होंने भी कुछ न कुछ उपाय करके

వల్లూరు శివప్రసాద్

श्री वल्लूरु शिवप्रसाद

जन्म : १९५५

प्रकाशन : लगभग ६० से कहानियां प्रकाशित. की कहानियां विभिन्न प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत. कहानी संग्रह 'ताजमहल' मैसूर विश्वविद्यालय के तेलुगु पाठ्यक्रम में सम्मिलित, कई उपन्यास, एकांकी, नाटक और बच्चों के लिए लिखी कहानियां भी प्रकाशित.

अन्य : कुछ नाटक एवं कहानियों का नाट्यरुपांतर आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से प्रसारित. टीवी और फ़िल्मों के लिए पटकथा लेखन. नाटककार के रुप में कई बार पुरस्कृत.
कुछ कहानियां अनूपित होकर 'नई दुनिया', 'अक्षरा', 'इंद्रप्रस्थ भारती', 'नवनीत', 'वीणा', 'समकालीन भारतीय साहित्य' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित.

संप्रति : आंध्रप्रदेश सरकार के स्वास्थ्य विभाग में अधिकारी तथा प्रगतिशील लेखक संघ, गुंटूर जिला एकक के महासचिव

कीड़ा मारने की दवाइयों की दुकानों में उधार के खाते खुलवा लिये.

कीटनाशक दवाओं के व्यापारियों की मानो चांदी हो गयी थी. वे लगातार ढेर सारी कीटनाशक दवाएं मंगाकर ट्रकों से उतरवा रहे थे. कुछ किसानों को पूरे नक़द भुगतान पर बेच रहे थे तो दूसरी ओर भरोसेमंद व्यक्तियों को पूरी तरह उधार पर भी दे रहे थे. कुछ और किसानों से अंशतः नक़द ले रहे थे और बाक़ी उधार दे रहे थे.

अचानक किसानों में जागृति हुई थी. घर के सभी लोग मुंह अंधेरे ही नींद से जागकर बड़ी मुश्किल से स्प्रेयर कंधे पर ढोते हुए खेतों की ओर दौड़ रहे थे. मोटरों की खर्र-खर्र से आसमान गूंज रहा था. गांव की सीमाओं से दवाइयों की बू असहनीय रूप में आ रही थी.

जिन्हें यह विश्वास नहीं था कि दवाई के छिड़काव से कीड़े मर जायेंगे, वे कीड़ों को चुनकर अलग करने के लिए सीधे ही मज़दूरों को लगा रहे थे. एक सौ कीड़े पकड़ने के लिए चार रुपये की मज़दूरी दी जा रही थी. क्या बच्चे और क्या बूढ़े - उम्र के लिहाज़ के बिना मज़दूरों की मांग बेतहाशा बढ़ गयी थी. वे लोग पौधों पर चिड़ियों की तरह धावा बोलकर प्रति व्यक्ति लगभग एक हज़ार कीड़े जमकर चुन रहे थे.

दवा छिड़कने और कीड़े पकड़ने में इतना परिश्रम करने के बावजूद कितनी फ़सल हाथ लगेगी, इस बारे में किसी को भी ठीक-ठीक अंदाजा नहीं था. यह सब केवल उनकी आशा थी.....आतुरता और प्रकृति के साथ संघर्ष.

अमरय्या का जीवन अन्य किसानों से भिन्न नहीं था. वे सभी एक ही नीड़ के पंछी थे. जो कुछ अंतर था, वह केवल छोटे-बड़े किसानों के बीच परिस्थितियों के साथ निपटने की क्षमता में ही था. बड़े किसान दबते जा रहे थे तो छोटे किसानों की हालत और भी पतली हो रही थी.

पिछले चार-पांच साल से कर्ज़ जो ब्याज के साथ बेतहाशा बढ़ रहा था, दावानल की तरह फैलकर जीवन को अपने शिकंजे में कसता जा रहा था. एक साल जब फ़सल कुछ ठीक हुई और आय संतोषप्रद रही, तब वह केवल बड़े लड़के की शादी करा सका. वह बेटा भी अब दो बच्चों का बाप बन गया. परिवार और बड़ा हो गया.

लड़की सयानी हो चुकी थी, तो भी क़र्ज के डर से वह उसके प्रति अपने दायित्व के निर्वाह को साल-दर-साल टालता आया था. लेकिन यह कब तक संभव था? इस आशा के साथ कि वैशाख

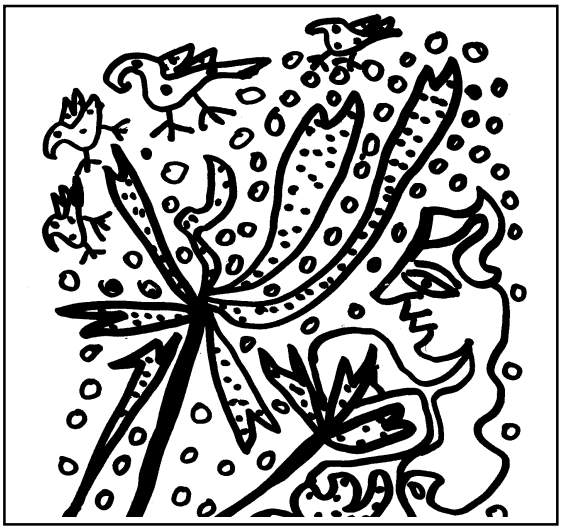

के महीने तक पैसा हाथ में आ जायेगा, उसकी सगाई कर ली गयी थी. उसने सोचा कि यदि बेटी की शादी का कारण बताकर कुछ न कुछ राशि ऋणदाताओं को चुका दे और बाक़ी पैसे से किसी न किसी तरह लड़की के हाथ पीले कर दे तो वह अपनी ज़िम्मेदारी से निवृत्त हो जायेगा.

स्नातक स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद उसके छोटे बेटे को न तो कोई नौकरी मिली और न ही वह खेतीबारी करने योग्य रह गया था. उसकी पढ़ाई के लिए जो ख़र्च हुआ वह भी कुछ कम नहीं था.

पुराना कर्ज़ अपने आप बढ़ रहा था. इसके अलावा कृषि कार्यों के लिए रुपया-पैसा लगाना था, सो इसके लिए रुक्का लिखकर और सोना गिरवी रखकर इस साल फिर से उधार लेना पड़ा. पांच एकड़ ज़मीन थी, फिर भी घर-परिवार का गुज़ारा होना दूभर हो गया था.

वह गांव में अपने साथी किसानों की गतिविधियों को देख रहा था. सबकी तरह वह भी अगर दवाइयों के छिड़काव का प्रयास करेगा तो पैदावार बढ़ सकेगी और इससे अतिरिक्त आमदनी हो सकेगी. लेकिन उसके लिए पूंजी लगाना अत्यंत आवश्यक था.

यूं ही हाथ पर हाथ धरे घर में बैठे रहना उसे गवारा नहीं था, इसलिए वह खेत की ओर चल पड़ा. मगर दरअसल वहां जाकर उसके लिए कुछ करना-धरना नहीं था. रास्ते पर खेतों में चहल-पहल दिखाई दे रही थी. कुछ लोग दवाई छिड़क रहे थे तो कुछ कीड़ों को चुनकर पत्तों से अलग करवा रहे थे.

उसने अपने सारे खेत में चहलक़दमी की. जिस किसी भी

पौधे को वह देखता, उसमें कीड़े थे..... हरे रंग के. कीड़ों के कारण फूल झड़ते जा रहे थे मानो किसी विवाहिता का सुहाग मिट्टी में मिल रहा हो. कीड़े पौधों के कच्चे फलों को काट-काटकर छलनी कर रहे थे. स्थिति इतनी भयावह थी तो फिर फ़सल भी क्या बचती और कैसे बचती? कीड़ों को मारने की दवा ख़रीदने के लिए उसने तीन हज़ार रुपये फूंक डाले थे. पर न कीड़े मरे थे और न फूल ही बचे थे. यह सब याद करने से अमरय्या की आंखें भीग उठी.

उसकी आशाओं पर पानी फेरते हुए कीड़े पौधों का सत्यानाश कर रहे थे. उन्हें देखते हुए उससे यूं ही खड़ा नहीं रहा गया. पौधों की ओर बढ़कर वह एक-एक कीड़े को पकड़कर अपनी झोली में डालने लगा. अकेले वह आख़िर कितने कीड़ों को चुन सकता था? कितनों को मार सकता था?

खेतों के बीच कच्चे रास्तों पर चलती हुई अचानक एक मोपेड अचानक रुक गयी. उसकी आवाज़ सुनकर अमरय्या ने सिर उठाकर देखा. उसने कृष्णमूर्ति को पहचान लिया. कृष्णमूर्ति गाड़ी को स्टैंड पर खड़ी करके मेंड़ों पर चलते हुए उसके खेत में आ रहा था. तो वह भी पौधों के बीच में से चलकर मेंड़ पर आ पहुंचा.

''फ़सल कैसी है अमरय्या जी?'' कृष्णमूर्ति ने पूछा.

तब तक चुन-चुनकर बटोरे हुए मुट्ठी-भर कीड़ों के पिंड को उसने झोली से नीचे गिरा दिया और चप्पल से उन्हें जी-भर रौंदते हुए निराशा-भरे स्वर में कहा,''ऐसी है!''

''ज़्यादातर तो ऐसी ही है जी! भाव तो अच्छा है. फ़सल एक-दो क्विंटल ज़्यादा हो जाय तो फ़ायदा रहेगा. सभी लोग ख़ूब दवा छिड़क रहे हैं. आपने भी यह कराया होता तो ठीक होता न?'' उसने कहा.

''जितनी गुंजाइश थी, उतना मैंने जोड़-जुगाड़कर कीड़ों के हवाले कर दिया है. अब और कहां से लाऊं?'' अमरय्या ने ठंडी सांस लेते हुए कहा.

कृष्णमूर्ति दो मिनट सोचता रहा. ''एक काम करेंगे . शहर में मेरी जान-पहचान का एक दुकानदार है. मैं कहूंगा तो मान जायेगा. मैं आपको कीटनाशक दवा उधार पर दिलवाऊंगा. जब फ़सल आयेगी तब हिसाब देख लेंगे.'' कृष्णमूर्ति ने इत्मीनान से कहा.

अमरय्या तुरंत हां या ना नहीं कह सका. उधार के नाम से ही उसका दिल धक-धक करने लगता था. दूसरी ओर इस कारण से कीड़े की मार से तो लगता है कि फ़सल एक क्विंटल भी हाथ नहीं आयेगी. वैसे भी वह पहले ही हज़ारों रुपये बरबाद कर चुका था. फिर भी, यहां तक आने के बाद उसका मन नहीं कर रहा था कि हाथ पीछे खींच ले. आवश्यकताएं उसकी आशा को जगा रही थीं और आशा उसकी हिम्मत बंधा रही थी. उस हिम्मत ने ही उसको प्रेरित किया कि उसने उसके प्रस्ताव के लिए हामी भर दी.

''उधर कुछ काम से जा रहा हूं. आधे घंटे में लौट आऊंगा. मेरी गाड़ी से दोनों ही शहर चलेंगे.'' यह कहकर कृष्णमूर्ति वहां से चला गया.

एक घंटे के बाद दोनों शहर के लिए निकल पड़े. उस गांव से शहर तीन किलोमीटर की दूरी पर था. रास्ते भर अमरय्या उस उधार के बारे में ही सोच रहा था जो वह लेने जा रहा था.

कृष्णमूर्ति कपास का व्यापार करता था. खुदरे तौर पर किसानों से कपास ख़रीदकर वह तीन-चार कंपनियों के लिए माल की सप्लाई किया करता था. इस तरह बेचने से किसानों को प्रति क्विंटल पच्चीस-तीस रुपये कम मिलते थे. फिर भी बिना हाथ-पांव मारे और बिना अपनी जगह से हिले माल बेचने के एक हफ़्ते के भीतर ही पैसा हाथ में आयेगा, इस भरोसे के कारण प्रायः सभी किसान अपना माल उसी को देते थे.

यह बात अकेला कृष्णमूर्ति ही जानता था कि कांटे पर माल को तुलवाने में कुछ-कुछ कमबेशी और उसे बेचने में उसकी होशियारी के कारण लोग-बाग उसके बारे में जो अनुमान लगाते थे, उससे कहीं अधिक लाभ उसे मिलता था. एक ओर ज़मीन पर विश्वास करके वहां के किसान पिछले चार साल से ऋण के दुश्चक्र में ऊब-डूब हो रहे थे तो दूसरी ओर व्यापार पर भरोसा करके वह हजारों के मुनाफ़े से सुख-सुविधाओं में सराबोर हो रहा था.

जिस काम पर वे गये, वह जल्दी ही निपट गया. पांच एकड़ के लिए दो क़िस्तों में चुकौती करने की शर्त पर उसने दस लीटर की कीटनाशक दवा ली थी. हिसाब कुल दो हज़ार चार सौ रुपये से कुछ अधिक हो गया था. बाकी कुछ नक़द भी लेकर कुल ढाई हजार रुपये की उधारी के लिए उसने खाता-बही में अपने अंगूठे की छाप लगायी. अंगूठे पर स्याही लगाकर छाप लगाते समय उसका हाथ कांप उठा.

''जवाबदारी मेरी है. फ़सल के आने भर की देर है. इनकी ओर से सारा पैसा मैं जमा कर दूंगा.'' कृष्णमूर्ति ने खाद विक्रेता को विश्वास दिलाया.

कीटनाशक दवा के डिब्बों को अच्छी तरह बंधवाकर दोनों बाहर चले आये.

''कृष्णमूर्ति जी! समय पर भगवान की तरह आकर आपने

मदद की है. मंझधार में डूब रहे मुझे सहारा देकर आपने किनारे पर पहुंचा दिया है.'' अमरय्या ने कृतज्ञता भरे स्वर में कहा.

''ज़बानी मदद के सिवा मैंने किया ही क्या है?'' हल्की-सी मुस्कान के साथ कृष्णमूर्ति ने उत्तर दिया.

किसी दूसरे काम की वजह बताकर कृष्णमूर्ति वहां से अपने रास्ते चला गया.

अमरय्या ने कीटनाशक दवा का बक्सा उठाकर अपने सिर पर रख लिया. बस स्टैंड तक रिक्शे के लिए दो रुपये ख़र्च करने के लिए उसका मन नहीं माना. आधे घंटे में वह बस स्टैंड पहुंच गया.

तब तक दोपहर ढल चुकी थी. मुंह अंधेरे अमरय्या ने एक गिलास का मट्ठा जो पी लिया था, वह जाने कब का सूख चुका था. पेट में भूख ज़ोर मार रही थी. उसे बेहद थकान महसूस हो रही थी. उसे यूं लग रहा था जैसे चाय का घूंट हलक़ के नीचे उतारे बिना घर पहुंचने के लिए उसमें ताक़त नहीं रहेगी.

काका के ढाबे में पौन रुपया देकर उसने चाय पी ली. उसकी जान में जान आयी.

इतने में बस भी आ गयी.

हाथ से निकल रही फ़सल अपनी पकड़ में आने का आनंद अमरय्या को उसी वक़्त अनुभव हुआ. इस समय प्रचलित दर पर देखा जाये तो प्रति एकड़ के लिए चार क्विंटल होने पर भी लाभ की बात जैसी भी हो, पूंजी में कोई नुक़सान नहीं होगा.

दवाई को देखते ही बड़ा लड़का आश्चर्यचकित हो गया.

''पैसा कहां से मिला बापू?'' उसने पूछा.

''उधार पर लाया हूं. सभी की तरह हमें भी हिम्मत करनी चाहिए.'' उसने कहा.

उसका बेटा और राजम्मा दोनों दवावाले डिब्बों की ओर टुकुर-टुकुर देख रहे थे.

अमरय्या में फिर से उत्साह भरता जा रहा था. मुंह अंधेरे ही दो दिन घर के सभी जन खेत पर गये. दवा छिड़काने का एक दौर पूरा हो गया.

छिड़काव के लिए दवा तैयार करते समय उसके बेटे को शंका हुई. ''यह दवा ख़ालिस है न बापू?'' उसने पूछा.

''अरे! कृष्णमूर्ति ने अपनी पहचानवाले की दुकान से दिलवाई है. इसमें फ़र्क़ कैसे होगा?'' अमरय्या ने कहा.

''लगता है, दवाई उतनी चिकनी भी नहीं है और पानी में भी ठीक से नहीं घुल रही है।'' अपने अनुभव के आधार पर उसके पुत्र ने कहा।

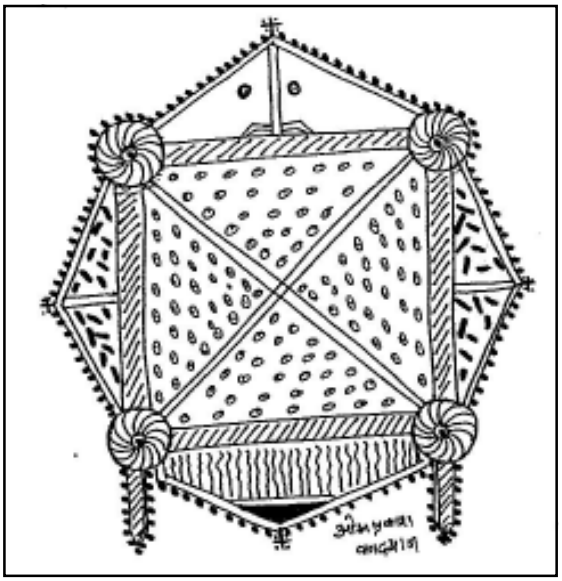

''अरे बुद्धू! उधार देने पर भी घटिया क़िस्म का माल देते हैं क्या?'' उसने अपने बेटे के शक की कोई परवाह नहीं की.

अगले दिन अमरय्या खेत पर गया. सारे खेत में चहलक़दमी की. उसको लगा कि कीड़ा मरा नहीं है. उसने सोचा कि उसके बेटे ने उसके मन में जिस शंका का बीजारोपण किया, शायद वही उसके मन में भ्रम पैदा कर रही है.

लगातार चार दिन तक वह खेत को ध्यान से देख रहा था. कीड़े फूलों और कच्चे फलों को कुतरते ही जा रहे थे. दवा छिड़कने पर भी कोई फ़ायदा नज़र नहीं आ रहा था. तभी उसे संदेह हुआ कि उसके बेटे की कही हुई बात शायद सच हो सकती है !

जब कृष्णमूर्ति मिला तो उसने उससे पूछ ही लिया.

''वे दुकानवाले तो बहुत विश्वसनीय हैं. असल में अभी जो कीड़ा पैदा हो रहा है वह आसानी से मरता ही नहीं.'' उसने कहा.

दोबारा दवा का छिड़काव किया गया. मगर कीड़ों की अधिकता कम नहीं हुई. ज़रूर दाल में कुछ काला प्रतीत हो रहा था. वरना जहां जो कीड़ा है, वहीं पर न मरकर ज़िंदा रहता?

अमरय्या ने यह बात आसानी से छोड़ना नहीं चाही. उसने इस बात की जांच-पड़ताल करवानी चाही कि आख़िर उसकी ख़रीदी हुई दवा खरी है या फिर उसमें कोई मिलावट है.

वह तो ठहरा निरा काला अक्षर भैंस बराबर. क्या उसकी बात पर ये अफ़सर लोग कान देंगे? वे तो अगली बुवाई तक उससे चक्कर लगवायेंगे. उसका छोटा बेटा तो पढ़ा-लिखा है. इसलिए उसने सोचा कि यह काम उसको ही सौंपना बेहतर होगा.

डिब्बों में नीचे की सतह पर जो कुछ दवा बची थी, वह एक डिब्बे में उंडेलकर उसने लड़के के हाथ में पकड़ा दिया.

''छोटू! मुझे शक है कि इसमें मिलावट है. यह शहर ले जा और सच्चाई का पता लगा ले. यह सब मैं तो नहीं जानता.'' उसने अपने बेटे को यह काम सौंप दिया.

उसका बेटा शहर के चक्कर लगाने लगा. अमरय्या रोज़ उससे पूछताछ करता रहा. मामला लंबित होकर टल रहा था तो बेटे पर वह झल्ला भी उठा था.

''सरकारी दफ़्तरों में काम इतनी आसानी से होगा क्या? लगता नहीं कि किसी के पास भी समय की कमी है. पर कोई काम होता नहीं.'' छोटू ने कहा.

रोज़ वह खेत पर जाकर फ़सल को नुक़सान पहुंचा रहे कीड़ों को देख ही रहा था. रोज़-रोज़ फ़सल का सत्यानाश होना बरक़रार था. क्या करना चाहिए, यह उसे नहीं सूझ रहा था. उसके हाथ-पैर सुन्न-से हो गये थे.

आखिर सच्चाई सामने आ ही गयी.

''बापू! उस दुकानदार ने हमें ठग लिया है. उस दवाई में मिलावट थी. अगर हम पुलिस थाने में रपट करें तो उन पर कार्रवाई होगी.'' छोटू ने बताया.

''ये अफ़सर लोग क्या करेंगे? जितनी गुंजाइश होगी, उतना खायेंगे. नहीं तो जेल भेजेंगे या जुर्माना लगायेंगे. बस यही तो है. हमें जो नुक़सान हुआ उसकी भरपाई कोई करेगा क्या?'' बड़े ने व्यथित होकर कहा.

अमरय्या थोड़ी देर के लिए कुछ बोल नहीं सका. उसके मन में आक्रोश आग की तरह सुलगने लगा.

माल ख़रीदने से जो नुक़सान हुआ वह ढाई हज़ार का था. लेकिन उसने जो धोखा दिया उसके कारण पांच एकड़ की फ़सल का सत्यानाश हो गया. इतना नुक़सान कैसे पूरा होगा? वह किस क़दर आस लगाये बैठा था कि उसका सारा कर्ज़ चुक जायेगा और वह अपनी बेटी के हाथ पीले कर सकेगा. लेकिन अब?.....अब उसकी मान-मर्यादा पर ही आंच आ रही थी. परिस्थितियां उसकी ज़िंदगी को सड़क पर धकेल रही थीं.

कृष्णमूर्ति ने उसे कैसे विश्वास दिलाया था? मुंह में राम और बग़ल में छुरी इसी को तो कहते हैं? उस दुकानदार से मिलनेवाली दलाली के पैसे के लालच में सोने जैसी फ़सल को उसने कीड़ों के हवाले कर डाला.

आंधी-पानी, सांप-बिच्छू....इन सबकी परवाह किये बिना दिन-रात मेहनत करते खटनेवाले उसके जैसे किसानों के लिए आख़िर क्या बचता है? पेट भर भूख और आंख भर आंसू. बरसों से ऐसे दलाल और फ़रेब उसके जीवन को अपने जाल में फंसा रहे हैं और उलटे घड़ियाली आंसू बहा रहे हैं. जीते जी उनकी ज़िंदगी को ऐसी चीलें ले उड़ रही हैं, नोच-नोचकर खा रही हैं तो इस ओर कौन ध्यान दे रहा है?

अमरय्या के हृदय में आक्रोश ज्वालामुखी की तरह भड़क उठा. उसकी आंखों से आग की लपटें निकलने लगीं. उसकी मुट्ठियां भिंच गयीं. वह एक महाशक्ति की तरह उठ खड़ा हुआ. लंबे-लंबे डग भरते हुए वह शहर की ओर चला.

अमरय्या ने आग बबूला होकर उस दुकान में क़दम रखा जहां से उसने कीड़ामार दवा ली थी. कृष्णमूर्ति भी उस समय वहीं पर मौजूद था.

''नक़द है तो खरा माल और उधार है तो खोटा माल देते हो तुम लोग?'' अमरय्या ने कठोरतापूर्वक प्रश्न दागा.

दुकानदार यह सुनकर चौंक उठा. लेकिन तुरंत ही वह संभल गया और बनावटी हिम्मत दिखाते हुए अमरय्या को डांटने लगा.

''अंटसंट मत बको. चीख़ने-चिल्लाने के लिए यह तुम्हारा मवेशीख़ाना नहीं है.'' धमकी-भरे स्वर में उसने कहा.

अमरय्या का क्रोध अपनी सीमाएं तोड़ चुका था. उसने अपने दोनों हाथों से वहां खड़ी मेज़ उठाकर उसकी तरफ धकिया दी. दुकानदार चित् होकर गिर पड़ा. कृष्णमूर्ति ने उसे रोकने की कोशिश की, मगर वह अमरय्या के हाथ की मार से सड़क पर आ गिरा.

''इन कमबख़्तों की दी हुई जूठी रोटी के लालच में तू मुझे ठगता है रे?'' उसने दांत किटकियाये.

ताव में आकर अमरय्या अपने हाथ की पहुंच में जो भी खाता-बहियां और दवाइयों के डिब्बे आये, वे सब सड़क पर फेंकने लगा.

दुकान का मालिक और उसके मुंशी अमरय्या पर जुल्म ढाने लगे. लेकिन अमरय्या उनके प्रहारों की परवाह नहीं कर रहा था. उसका तो एक ही लक्ष्य था. उसके जैसे किसानों के परिवार ऐसे धोखेबाज़ों के कारण बर्बाद न हों. ऐसे मक्कारों को उचित दंड मिलना चाहिए.

कीटनाशक दवा ख़रीदने के लिए जो किसान वहां आये

थे, उन्होंने स्थिति को समझकर अमरय्या का साथ दिया. हाथापाई हुई. माहौल तनावपूर्ण हो उठा.

कुछ ही मिनट के भीतर दवाइयों के डिब्बे सड़क पर बिखर गये. दुकान तहस-नहस हो गयी.

तभी पुलिस का वाहन तेज़ गति से आकर दुकान के सामने रुका. पुलिस के सिपाहियों ने किसानों को घेर लिया.

''आइए, साहब लोगों! हम इस धोखे में पड़े रहे कि कीड़ा मर जाये तो हम अपनी फ़सल को बचा पायेंगे. हज़ारों रुपए कीड़ा-मार दवा के लिए हम फूंक रहे हैं. लेकिन मिलावट की दवा बेचकर किसानों की आंखों में धूल झोंकनेवाले ऐसे कीड़ों को जब तक अलग नहीं करेंगे, तब तक हम लोगों की ज़िंदगी को लगा घुन दूर नहीं होगा. अपने पौधों पर लगे कीड़ों को चुन-चुनकर अलग करनेवालों को हम तय की हुई मज़दूरी दे रहे हैं. तो फिर हम लोगों की ज़िंदगी का सत्यानाश करनेवाले ऐसे ख़तरनाक कीड़ों को निकाल फेंकने के लिए आप सब लोग मुझे क्या दोगे बता देना बाबू!'' अमरय्या उत्तेजना के मारे कांप रहा था और चिल्ला रहा था. उस वक़्त उसे रोकने की हिम्मत किसी की नहीं हो रही थी.

१०१ पूर्णिमा अपार्टमेंट्स,
A/१, अशोक नगर, गुंटूर (आं.प्र.) ५२२०२२,
फोन : ९८४८२४९१९२

अनुवादक : **डॉ. के.वी.नरसिंह राव, रिजर्व बैंक अधिकारी आवास, गोकुलधाम, गोरेगांव (पू.) मुंबई-४०००६३. फोन : ९३२३९०७२९८, ९८३३१२२७०६**

आपको यह अंक कैसा लगा. हमें आपकी प्रतिक्रियाओं का बेसब्री से इंतजार रहता है.

- संपादक

लघुकथा

कफ़न की तैयारी

ज्ञानदेव मुकेश

बरसात की शुरुआत हो चुकी थी. शांत नदियों के उन्मत होने के दिन करीब थे. किसान बहुत चिंतित थे. मिट्टी के बांधों में कई जगह दरारें थीं. जहां लहलहाती फसलें नवजात शिशुओं की तरह किसानों में उमंग भर रही थीं, वहीं ये दरारें उन फसलों पर काल बनकर खड़ी थीं.

किसानों का एक जत्था जिलाधिकारी से मिला. उन्होंने दुखड़ा रोया,''महोदय, कृपाकर बांध की मरम्मत करवा दें. वरना हम कहीं के नहीं रह जायेंगे. हमारा सर्वस्व लुट जायेगा.''

जिलाधिकारी ने आश्वस्त किया,''आप चिंता न करें. आपके लिए बहुत कुछ किया जायेगा. हम संभावित बाढ़ को लेकर पूरी तरह मुस्तैद हैं.''

जत्था भरोसा करके लौट गया.

अगले ही दिन जिलाधिकारी महोदय के कक्ष में एक बड़ी सभा आयोजित हुई. इस बात पर विस्तृत चर्चा हुई कि यदि बाढ़ आयी तो राहत कार्य किस प्रकार संपन्न होंगे. राहत सामग्री के आपूर्तिकर्त्ता के नाम तय हुए. कुछ मोटरबोट और नाववालों को पहले से ही तैयार रहने के लिए कहा गया. यह भी तय हुआ कि यदि फसलें नष्ट हुईं तो मुआवजे की राशि क्या होगी और उसका वितरण किस प्रकार होगा. घर बहेंगे तो राहत शिविर कहां बनेंगे. सिविल सर्जन साहब ने बताया कि बाढ़ के बाद महामारी फैली तो दवाइयां कब और किस प्रकार बटेंगी. यदि जानें गयीं तो पोस्टमार्टम वगैरह कहां होंगे. अंत में यह भी सुनिश्चित हुआ कि बाढ़ में डूबकर इंसान और मवेशी मरते हैं तो लाशें कैसे निकाली जायेंगी? उनका दाह संस्कार कहां होगा? मगर दुर्भाग्य से उन तमाम शुभचिंतकों के बीच बांधों की मरम्मती पर कोई चर्चा नहीं हुई.

शाम को किसानों ने आकर फिर पूछा,''साहब, कुछ हुआ?''

जिलाधिकारी ने बड़े इत्मीनान से कहा,''हां, आपके लिए जो सर्वथा उचित था, उसकी तैयारी कर ली गयी है.''

श्री आई.एन.मल्लिक का मकान,
स्टेट बैंक के पास, शिवाजी कॉलोनी,
पूर्णिया- ८५४३०१ (बिहार)

'निष्कलुष बेशक न हो वो आदमी निश्छल तो है!'

✍ डॉ. शिव ओम 'अंबर'

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, आमने-सामने. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो.कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ.बटरोही, राजेश जैन, डॉ.अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ.हरिमोहन, डॉ.दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ.अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ.फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ.कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ.गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं.किरण मिश्र, डॉ.तेज सिंह, डॉ.देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ.उर्मिला शिरीष, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रज़ाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ.विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी , राजेंद्र वर्मा और डॉ. सेराज खान 'बातिश' से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है डॉ. शिव ओम 'अंबर' की आत्मरचना.

कविता मेरे जीवन के साथ अनपेक्षित और अप्रत्याशित रूप से संयुक्त हुई और शनैः शनैः मेरी जीवन-चेतना को आच्छादित करते हुए मेरी साधना भी बन गयी. उपासना भी, मेरी प्रार्थना भी बनी आराधना भी. बात सन् १९६७ की गर्मियों की है. मैंने तब इंटरमीडिएट की परीक्षा दे रखी थी और एक पारिवारिक विवाह-समारोह में सम्मिलित होने के लिए अल्मोड़ा गया हुआ था. दाज्यू, भाभी जी के साथ तथा परिवार के अन्य सदस्यों के साथ मैं भी प्रथानुसार मंगल कार्य संपन्न हो चुकने पर ग्वालदेव जी के मंदिर में गया. यह अल्मोड़ा से लगभग चार किलोमीटर दूर चितै नामक स्थान पर है. वहां पहली बार मैंने पशु-बलि का दृश्य देखा. लोग अपनी-अपनी मनोकामना की पूर्ति पर कृतज्ञता प्रकट करने के लिए निरीह बकरों को लेकर आ रहे थे और फिर मंदिर-परिसर में उनका पूजन कर उनकी बलि चढ़ाई जा रही थी. मेरे वैष्णव संस्कारों के लिए यह दृश्य अत्यंत दारुण था. मेरी चेतना पर धार्मिक कर्मकांड के रूप में घटित यह अत्याचार ही छाया रहा और किसी अवश आवेश से आवेष्ठित होकर मैंने घर पहुंचकर अपनी नोटबुक में कुछ सहज स्फूर्त पंक्तियां लिखीं जिनमें इस प्रथा के प्रतिकार और प्रतिरोध का भाव था. उन पंक्तियों को लिखकर मेरी बेकली कुछ कम हुई.

हमारे परिवार में (मैं अपने मामाजी के यहां गया हुआ था.) संगीत के संस्कार घुट्टी में पिलाये जाते थे. मोहन दा (प्रख्यात पर्वतीय लोकगायक और संगीतकार मोहनचंद्र उप्रेती), भगवत दा, धीरेंद्र दा और उनकी मित्र-मंडली के सभी सदस्य गीत, संगीत में निष्णात थे. घर पर गोष्ठियां कभी भी हो जाती थीं. ऐसी ही एक गोष्ठी में मुझसे भी कुछ सुनाने को कहा गया. संगीत में तो मेरी गति थी नहीं अतः मैं अपनी नोटबुक उठा लाया और उसी बलि-दृश्य के संदर्भ में शब्दायित अपनी अरुणवर्णा प्रतिक्रिया को गोष्ठी में प्रस्तुत कर दिया. मोहन दा के वहां उपस्थित मित्रों में एक वयोवृद्ध सज्जन एक ख्यातनाम साहित्यकार थे. उन्होंने पूछा - ये पंक्तियां तुमने लिखी हैं? मेरा सकारात्मक उत्तर पाने पर उन्होंने मुझे बताया कि तुमने नयी कविता की विधा में एक अच्छी कविता लिखी है और शायद तुम्हें पता नहीं तुम एक कवि हो, कवि होने को ही जन्मे हो. मैं छुट्टियां बिताकर फ़र्रुख़ाबाद आ गया, बात आयी-गयी हो गयी.

महाविद्यालय में, कुछ वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में मेरी

उपस्थिति चल-वैजयंती जीतकर लाने के कारण हुई. फिर हमारे यहां एक सप्ताहव्यापी हिंदी साहित्य समारोह मनाया गया जिसमें विविध गोष्ठियां तथा अंतर विश्वविद्यालीय प्रतियोगिताएं आयोजित हुईं. हिंदी विभाग के आचार्य प्रवर डॉ. मनीराम जी मिश्र ने एक दिन मुझे रोक कर कहा कि एक प्रतियोगिता कविता की भी है जिसमें किसी एक द्वित्व पर (अर्थात शमा-परवाना, कली-भ्रमर आदि पर) कविता लिखनी है. मुझे लगता है कि तुम्हें इसमें भाग लेना चाहिए.

उन दिनों मेरे घर बिजली नहीं लगी थी. पिताजी का स्वर्गवास हो चुका था, दीदी अपनी ससुराल में थीं और हम दो लोग (मैं और मेरी मां जिसे मैं ईजा कहता था) अभावों की बारहरखड़ी पढ़ते और परेशानियों के पहाड़े रटते हुए एक बेहतर भविष्य की आशा में संघर्ष कर रहे थे. मां की समस्त आशाओं का एकमात्र केंद्र मैं ही था और मैं कोशिश कर रहा था कि शीघ्र ही जीविका कमाने लायक हो जाऊं. अक्सर देर रात तक मेरा अध्ययन चलता रहता था. एक दिन मैं मोमबत्ती की रोशनी में अपने कुछ नोट्स बना रहा था कि मेरा ध्यान ज्योतिशिखा के आसपास मंडराते और अंततः भस्मसात होते परवानों पर गया और मुझे एक द्वित्व पर कविता लिखने की बात याद आ गयी. जलते हुए शलभ और पिघलती हुई शमा ने मुझे कुछ लिखने की प्रेरणा दी और उस रात मैं एक और कविता लिखकर ही सोया.

कविता का भाव मुझे याद है, कविता विस्मृत हो चुकी है. इसके प्रथम अंश में कवि, शलभ को वासना का तथा शमा को प्रीति का प्रतीक मानकर वासनात्मक उद्वेलन के अंततः भस्मीभूत होने की बात कहता है, प्रीति तो आलोकदात्री पवित्रता है, ज्योतिष्मती उत्कृष्टता! किंतु प्रथम अंश की समाप्ति पर कवि कहता है कि नहीं, मेरी बात पूरी नहीं हुई. मैं पंख जलाकर गिरे परवाने के ऊपर बूंद-बूंद टपकते शमा के अश्रुओं का भी साक्षी हूं. एक क्षण ऐसा भी आता है जब पूरी तरह पिघली हुई शमा उस दीवाने परवाने की जली हुई देह के पास एक प्रगाढ़ अश्रु-बिंदु बनकर निःशेष हो जाती है. उस समय दोनों की दैहिक अस्मिता एक ही धरातल पर पड़ी दीखती है. कवि कहता है कि मैं अपनी कविता का अंत एक प्रश्नचिह्न से करना चाहता हूं. क्या इस जटिल ज़िंदगी में ऐसा उलझा हुआ पल नहीं होता जिसमें वासना और प्रीति का, प्रकाश और अंधकार का विभेद विलीन हो जाता है और सामने सिर्फ़ एक शून्य होता है - अपरिभाषेय, अव्याख्य? अगले दिन मैंने एक फुलस्केप आकार के काग़ज़ पर लिखकर वह रचना गुरूवर डॉ. मिश्र को दे दी और उसे निर्णायक मंडल को सौंप दिया गया. समापन समारोह में विविध प्रतियोगिताओं के परिणाम घोषित किये गये. कविता-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कृत रचना के कवि के रूप में जब मेरे नाम की घोषणा हुई, मैं आश्चर्यचकित था और मेरे गुरुजन प्रफुल्लित. उस सभागार में देर तक बजती हुई तालियों की वह गूंज आज भी मेरी स्मृति के प्रकोष्ठ में सुबह-सुबह किसी हरी पत्ती पर पड़ी ओस की निष्कलंक बूंद की तरह सुरक्षित है.

जब मैं गंजडुंडवारा से बी.एड्. कर रहा था, कविता से जुड़ी दो महत्वपूर्ण घटनाओं ने मेरे जीवन-क्रम को दिशा देने में एक महती भूमिका निभायी. बी.एड्. के सभी छात्र-छात्राओं को भ्रमण के लिए मथुरा-वृंदावन ले जाया गया. हम लोग वृंदावन एक धर्मशाला में कई दिन ठहरे. लगभग प्रतिदिन ब्रजक्षेत्र का परिभ्रमण होता था और मंदिरों से वापस आने के बाद मैं अक्सर बेहद विक्षुब्ध हो जाता था. मुझे देवमूर्तियां आकृष्ट करती थीं, मंदिरों की भव्यता प्रभावित करती थी किंतु किसी दिव्यता की अनुभूति नहीं हो पाती थी क्योंकि मेरा सारा ध्यान मंदिरों के परिपार्श्व में घूमते, भूखे-नंगे बच्चे खींच लेते थे जो जन्मजात भिखारी बन गये थे. किसी सुंदर चेहरे पर उभरे भद्दे मस्सों की तरह ये बच्चे मुझे उस शोभन परिवेश

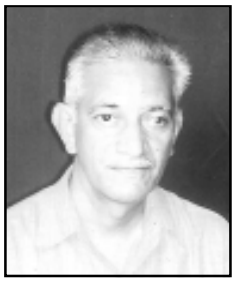

२३ सितंबर १९५२;
एम.ए.(हिंदी), पी.एच.डी, बी.एड्

शोध-विषयः हिंदी ग़ज़ल की वैचारिक भंगिमा, संवेदना एवं शिल्प.

प्रकाशन : 'आराधना अग्नि की', 'शिव ओम अंबर की चुनी हुई ग़ज़लें', 'शब्दों के माध्यम से अशब्द तक', विविध समवेत संकलनों में रचनाएं सम्मिलित.

विशेष : राष्ट्रीय साप्ताहिक ''पांचजन्य'' में 'गवाक्ष' नामक साहित्यिक स्तंभ का लेखन.

संप्रति : म्युनिसिपिल इंटर कॉलेज फ़तेहगढ़ में हिंदी प्रवक्ता.

डॉ. शिव ओम 'अंबर' की ग़ज़लें

(१)

यूं भी सब कुछ कहता है,
वो बेहद चुप रहता है।
दिल कच्ची छत का घर है,
हर बारिश में ढहता है।
खुशबू की ग़ज़लें लिखता,
इक चंदन-वन दहता है।
दुलहन खुश है पर अक्सर,
उसका काजल बहता है।

(२)

होठों पर नग़मे सीने के मध्य घाव है,
कवि का पूरा जीवन पीड़ा का पड़ाव है।
मुस्कानों से धोखा खा जाता हूं अक्सर,
धोखा खाकर मुसकाना मेरा स्वभाव है।
मित्रों पर तो बेशक न्योछावर हूं मैं पर,
अपने हर दुश्मन से भी मुझको लगाव है।
युद्धों को परिणत कर लेता हूं यज्ञों में,
श्रीमद्भगवद्गीता का मुझ पर प्रभाव है।
कंगाली में भी है अलमस्ती का आलम,
ऐसी जीवन-शैली ऐसा रख-रखाव है।

(३)

अग्नि के गर्भ में पला होगा,
शब्द जो श्लोक में ढला होगा।
दृग मिले कालिदास के उसको,
अश्रु उसका शकुंतला होगा।
दर्प ही दर्प हो गया है वो,
दर्पणों ने उसे छला होगा।
भाल कर्पूरगौर हो बेशक,
गीत का कंठ सांवला होगा।

(४)

उस अल्हड़ को गृहलक्ष्मी की गतिविधियां सिखलाना है,
अब उसको पल्लू सर पे रख संध्यादीप जलाना है।
सबकी आंखों में सपने थे सबकी आंखें गीली हैं,
दो लफ़्ज़ों में इस बस्ती का इतना ही अफ़साना है।
वो अक्सर करता रहता है चर्चाएं आदर्शों की,
वो शायर दानिशमंदों की नज़रों में दीवाना है।
जिसमें टूटे फ्रेमों वाली कुछ धुंधली तस्वीरें हैं,
हर दिल की बैठक के नीचे इक अंधा तहख़ाना है।
अंबर जी पढ़नी हैं ग़ज़लें तुमको इस कोलाहल में,
अंगारों पे रजनीगंधा की कलियां बिखराना है।

में नितांत अप्रासंगिक लगते थे और मैं भूखे-नंगों के भव्य भगवान से अपनी संगति नहीं बैठाल पाता था. इसी उपरिलिखित मस्सोंवाले बिंब को लेकर मैंने तब एक रचना वृंदावन पर लिखी थी - बेधक व्यंग्य मुद्रा के साथ और एक दिन रात्रि में होनेवाले कैंप फ़ायर में उसे सुनाया था. हमारे बी.एड्. के सभी अध्यापक और विभागाध्यक्ष वाजपेयी साहब उस दिन से मेरे प्रति कुछ अधिक ही भावतरल हो उठे और उनकी संस्तुति पर गंजडुंडवारा में होने जा रहे एक बड़े कवि-सम्मेलन में जो रचना मैंने पढ़ी थी उसकी भी एक कहानी है.

गणतंत्र-दिवस पर विद्यालय के लिए निकलते समय मैंने रास्ते में अपने रिक्शे पर ही कंबल ओढ़कर लेटे एक रिक्शेवाले को जगाया और उससे विद्यालय पहुंचाने को कहा. उसने पूछा - आज क्या है? मैंने बताया कि आज २६ जनवरी है, हमारा गणतंत्र-दिवस. उसने फिर पूछा - ये गणतंत्र दिवस क्या होता है? वस्तुतः उस आदमी के लिए पूरा दिन परिवार के हेतु जीविका कमाने की एक अविराम चेष्टा के समान था. किसी भी राष्ट्रीय उत्सव का उसके लिए कोई मूल्य नहीं था. एक आम आदमी की नज़र से हमारी स्वार्थांध राजनीति की निरर्थकता को रेखांकित करनेवाली और समस्त राजनीतिक दलों को प्रवंचना के प्रतीकों के रूप में देखनेवाली एक बेहद आक्रोशमयी रचना का उसके बाद जन्म हुआ. उसी रचना को मैंने कवि-सम्मेलन में पढ़ा और अगले दिन से ही मैं नगर की गलियों में लोकप्रिय एक ऐसा चरित्र बन गया जिसे लोग बड़े प्यार से अपने-अपने घर बुलाने लगे और चाय पीने का आग्रह करने लगे.

सत्र समाप्त हुआ, मैं बी.एड्. की परीक्षा देकर फ़र्रुखाबाद आ गया और फिर जीविका उपार्जन की जद्दोजहद में कविता को भूल सा गया. (वर्षों बाद मैं जब एक कार्यक्रम में गंजडुंडवारा गया, कुछ युवकों ने आकर प्रणाम किया और मुझे उस रचना की याद दिलाई जिसको लेकर मैं पहली बार कवि सम्मेलन के मंच पर चढ़ा

था, वे तब हाईस्कूल स्तर के छात्र थे और आयोजन में उपस्थित थे.)

मुझे एक ग्रामीण विद्यालय में नौकरी मिली. पास के ही कस्बे में बी.एड्. के मेरे सहपाठी श्री ज्योतिस्वरूप गुप्त अध्यापक थे. उनके विद्यालय के हीरक जयंती समारोह में एक दिन कविता के नाम भी था. उन पर उस कार्यक्रम के आयोजन का भार था. उन्हें मेरी याद आयी और उनके स्नेह-सूत्र से बंधा मैं शमसाबाद पहुंचा तथा कवि-गोष्ठी का संचालन किया, काव्य-पाठ किया. उस कार्यक्रम में तत्कालीन वयोवृद्ध साहित्यकार कुंवर हरिश्चंद्र देव वर्मा 'चातक' तथा ओजस्विता की धारा के सम्मान्य कवि विश्वनाथजी द्विवेदी भी थे. दोनों के ही प्रस्थान का मार्ग फ़र्रुखाबाद से होकर ही था. उन्होंने मेरे घर चलने की इच्छा प्रकट की और मैं संकोच से गड़-सा गया, मेरे पास उन्हें ठीक से बैठाने की भी व्यवस्था नहीं थी.

मेरे संकोच को दरकिनार करते हुए वे मेरे आवास पर आये, मां को प्रणाम किया, उनके हाथ का बनाया खाना भी खाया और तबसे जब भी फ़र्रुखाबाद से निकले उन्हें प्रणाम करने और मुझे आशीर्वाद देने घर पे आते रहे. एक दिन कविवर विश्वनाथ द्विवेदी मुझे हठपूर्वक अपने साथ अलीगंज ले गये. जहां आत्मदादा (कविवर आत्मप्रकाश शुक्ल) के संयोजन में एक विराट कवि-सम्मेलन हो रहा था. इस बीच मैं एक नयी रचना लिख चुका था. उसकी जन्म-गाथा भी उल्लेख्य है. मेरे नगर में देह-व्यापार में लिप्त स्त्रियों का एक खास मोहल्ला था. उस बदनाम बस्ती के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था. यौवन की कल्पनाओं से रंजित करके मैंने उस मोहल्ले का अत्यंत रंगपूर्ण चित्र अपने मन में बना रखा था. उत्सुकतावश एक रात मैंने उस प्रायः अंधेरी रहनेवाली गली में क़दम रखा. हर घर में मिट्टी के तेल की कुप्पियां जल रही थीं. हर उम्र की स्त्रियां ग्राहकों की प्रतीक्षा में भद्दे रंग-रोगन से चेहरे रंगे दरवाज़ों पर बैठी थीं. मुझे उस गली में आता देख कम उम्र का ग्राहक समझ उनमें से एक-दो कमसिन लड़कियां मेरे पास आ गयीं और अत्यंत कम क़ीमत का इशारा कर अपने कमरे की तरफ़ चलने का आग्रह करने लगीं. मेरी रूमानी कल्पना को गहरा आघात लगा, मेरे सामने भयावह ग़रीबी के कारण अपना जिस्म बेचने को तत्पर और न जाने किन-किन के चंगुल में जकड़ी निरीह बालिकाएं थीं. मेरी आंखें उनकी आंखों से मिलीं, वे समझ गयी मैं उनका ग्राहक नहीं उनके प्रति संवेदना रखनेवाला एक कमज़ोर इंसान हूं जो उनकी वर्तमान ज़रूरतों के लिए अर्थवत्ता नहीं रखता. उनकी आंखों में मुझे तिरस्कार का दंश नहीं अपितु, एक अजीब-सी निरीह करुणा की झलक मिली. मैं उन्हें दोनों हाथ जोड़कर उस गली से बाहर आ गया और देर तक सड़कों पर बद हवास-सा घूमता रहा तथा अपने भीतर विप्लव की दहकती चिनगारियों को लहकते तथा एक रचना की शक्ल में ढलते देखता रहा. इसी रचना को मैंने अलीगंज के मंच पर पढ़ा और आत्मदादा ने आगे बढ़कर मुझे गले से लगा लिया.

आत्म जी ने कुछ दिनों बाद अपनी मुंबई यात्रा में 'श्रृंगार-संध्या' नामक साहित्यिक संस्था के कार्यक्रम में एक नव हस्ताक्षर के रूप में मेरा नाम प्रस्तावित किया और मुझे वहां से आमंत्रण भी प्राप्त हुआ. यह घटना सन् १९७८ की है, तब तक मैं कुछ अग्निधर्मी ग़ज़लों को भी कह चुका था. मैंने श्रृंगार के उस मंच पर भी अग्नि की ही चर्चा की और आश्चर्यजनक रूप से साहित्यानुरागियों तथा पत्रकारिता जगत् का अभिभूत करनेवाला प्यार पाया. मेरी इच्छा जानकर आत्मदादा तथा रामरिख मनहर जी ने मेरी भेंट डॉ. धर्मवीर भारती से करायी. भारतीजी का आभिजात्य भाव बड़ा प्रसिद्ध था और लोग उनसे आतंकित से रहते थे. किंतु मेरे साथ उनका व्यवहार एक वत्सल पिता जैसा रहा. अपने घर पर मेरे साथ बैठकर उन्होंने भोजन किया, यह जानकर कि मैं एक कवि-सम्मेलन में आया था मुझसे आग्रहपूर्वक रचनाएं सुनीं, फिर स्वयं पुष्पाजी को रसोईघर से बुलाकर लाये, मेरी कविताएं (तब मैं राजनीति पर प्रहार करनेवाली ग़ज़लें ही मंच पर सुनाता था) सुनवायीं और फिर 'धर्मयुग' के लिए ग़ज़लें भेजने को कहा. मुंबई से लौटकर मैंने एक ग़ज़ल उनके पास भेज दी. तुरंत उनका उत्तर आया. मैंने तुमसे एक नहीं कई ग़ज़लें भेजने को कहा था, उन्हें बहुवचन में भेजो. उनके औदार्य से मैं अभिभूत था. १९७९ के गणतंत्र विशेषांक में धर्मयुग में मेरी चार ग़ज़लें एक साथ प्रकाशित हुईं और उनके कुछ अशआर राष्ट्रव्यापी सराहना पा सके-

राजभवनों की तरफ़ जायें न फ़रियादें,
पत्थरों के पास अभ्यंतर नहीं होता।
ये सियासत की तवायफ़ का दुपट्टा है,
ये किसी के आंसुओं से तर नहीं होता।

तथा

रीढ़ की हड्डी अलग रख आइए,
तख़्त के आगे अदब से जाइए ।
ख़ास शाही जूतियां हैं ये इन्हें,
आदमी की खाल से मढ़वाइए।

(कृपया शेष भाग पृष्ठ ३९ पर देखें.)

सागर/सीपी

'साहित्य मानव की मूल संवेदना की भावात्मक अभिव्यक्ति है!'

✍डॉ. शंभुनाथ आचार्य

(हिंदी संस्कृत के वरिष्ठ कवि-साहित्यकार डॉ. शंभुनाथ आचार्य से कवि श्री जे. पी. टंडन 'अलौकिक' द्वारा 'कथाबिंब' के लिए विशेष बातचीत.)

• आप संस्कृत, हिंदी एवं अंग्रेजी तीनों भाषाओं में समान रूप से साहित्य सृजन करते हैं. इसमें क्या क्रम रहा है. किस उम्र से लिखना प्रारंभ किया?

मेरा परिवार आनुवंशिक रूप से संस्कृत विद्या के लिए प्रख्यात रहा है. मेरे पितामह एवं पितृचरण प्रसिद्ध ज्योतिषी तथा वैद्य प्रवर होने के साथ ही संस्कृत के वरिष्ठ कवि भी रहे हैं. प्राइमरी शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत मुझे संस्कृत विद्यालय में प्रवेश दिलाया गया जहां से बारह वर्ष की सतत साधना के बाद आचार्य की उपाधि प्राप्त की. इसी के साथ-साथ हिंदी और अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन नियमित रूप से चलता रहा. इस बीच संस्कृत की रचनाओं का हिंदी-अंग्रेजी में और हिंदी-अंग्रेजी रचनाओं का संस्कृत में रूपांतर करने की प्रवृत्ति ने जागरूकता धारण कर ली, फिर आगे स्वतंत्र रूप से तीनों भाषाओं में रचनात्मकता का रूप ले लिया. इस प्रकार संस्कृत-हिंदी-अंग्रेजी क्रम से रचनात्मकता विकसित हुई. प्रथम संस्कृत रचना बारह वर्ष की आयु में प्रस्फुटित हुई. उपर्युक्त तथ्य को हिंदी के वरिष्ठ कवि डॉ. शिवओम 'अंबर' ने इन शब्दों में व्यक्त किया है, ''आचार्य जी हमारे अपने परिवेश के उन महत्वपूर्ण कवियों में से एक हैं जिन्होंने संस्कृत के श्लोक, हिंदी के छंद और अंग्रेजी 'वर्स'को अपनी काव्य प्रतिभा के पावन तीर्थ पर एक दूसरे से गले मिलने का सुअवसर उपलब्ध कराया है.''

• आपकी रचनाधर्मिता साहित्य के किस-किस रूप में प्रस्फुटित हुई है?

कविता से प्रारंभ होकर काव्य के विविध रूपों में, जैसे प्रबंधकाव्य, मुक्तक, गीत, कहानी, निबंध, समीक्षा, डायरीलेखन, उत्कृष्ट रचनाओं के अनुवाद, काव्यानुशासन आदि मौलिक स्थापना आदि विषयों पर लिखा है.

• आपके इस कथन से यह ध्वनित होता है कि कविता और काव्य दो भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं! कृपया स्पष्ट करें.

शब्द शिल्पी व्याकरण का एक सामान्य नियम है कि शब्द के व्युत्पत्तिपरक और प्रवृत्तिपरक (व्यावहारिक) अर्थ प्रायः भिन्न-भिन्न होते हैं. उदाहरण के लिए 'गौ' शब्द लें जिसकी उत्पत्ति गम् धातु में 'ऽो' प्रत्यय=गम्+'ऽो'= जोड़ने से होती है और इसका अर्थ होता है, चलनेवाला. यह इसका व्युत्पत्ति मूलक अर्थ हुआ किंतु प्रवृत्तिमूलक अर्थात व्यावहारिक अर्थ है, पशु-विशेष. यही नियम कवित्व, कविता और काव्य शब्दों पर लागू होता है. 'कवि' शब्द में भाववाचक 'त्व', 'ता' और 'ष्यञ्' प्रत्यय जोड़ने से क्रमशः कवित्व, कविता और काव्य शब्द बनते हैं. इस प्रकार से तीनों समानार्थक हैं. व्यवहार में कवित्व का अर्थ काव्य रचना कौशल, कविता का अर्थ लघु आकारीय छंदोबद्ध या छंदोमुक्त रचना और काव्य का अर्थ प्रबंधात्मक नियमबद्ध विस्तारमयी रचना. सुमित्रानंदन पंत की 'गुंजन', 'पल्लव', महादेवी वर्मा की 'नीहारिका', 'भामा', निराला के 'जुही की कली' आदि कविता संकलन हैं जबकि हरिऔध का 'प्रियप्रवास', 'सीता-वनवास', मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' प्रसाद की 'कामायनी' 'आंसू' आदि काव्य हैं. अंग्रेजी की 'पोइम' और 'पोयट्री' के समकक्ष कविता और काव्य को माना जा सकता है. संस्कृत जगत में काव्य शब्द का प्रयोग समस्त रस-साहित्य या ललित साहित्य के अर्थ में होता रहा है. काव्य मीमांसाकार राजशेखर (८८० ई. से ९२० ई) ने सर्वप्रथम 'साहित्य' शब्द प्रयोग कर कुछ विभाजक रेखा खींची है.

• आप साहित्य की मूल प्रेरक शक्ति किसे मानते हैं? किसी साहित्यिक कृति की समाज सापेक्षिता कहां तक स्वीकार्य है? 'निरंकुशाः कवयः' उक्ति इस तथ्य के विपरीत उद्घोषणा है, फिर?

आधुनिक परिमार्जित शब्दावली में साहित्य की मूल प्रेरणा आत्माभिव्यक्ति कही जा सकती है. भारतीय आचार्यों ने इस प्रश्न पर साहित्य के प्रयोजन के अंतर्गत विचार किया है. समन्वयवादी आचार्य मम्मट ने समाज और कवि की दृष्टि से चर्चा की है. आचार, ज्ञान, अमंगल निवृत्ति, सरसोपदेश, रस अर्थात आनंदानुभूति को सामाजिक दृष्टि से तथा यशोलाभ, अर्थलाभ, अनर्थ निवारण एवं सद्यः परनिर्वृति अर्थात आनंदानुभूति को कवि दृष्टि से वर्णन किया

है जो साहित्यकार की समाज सापेक्षता का ही उद्घोष है. साहित्य एवं समाज में आत्मा और शरीर का संबंध - अन्योन्याश्रय संबंध माना जा सकता है. भारतीय साधना में कवि की निरंकुशता को कभी क्षम्य नहीं माना गया है. महाकवि कालिदास द्वारा 'कुमार संभव' काव्य में वर्णित शिव-पार्वती के संभोग श्रृंगार की कटु आलोचना की गयी है. इसे माता-पिता के संभोग वर्णन के समान अनुचित ठहराया गया है. पश्चिमी सभ्यता का चश्मा लगाये समीक्षक भले ही इसे अन्यथा लें.

• साहित्य क्षेत्र में दिन पर दिन बढ़ती गिरावट पर आपकी प्रतिक्रिया क्या है? क्या इसमें सुधार नहीं लाया जा सकता? यदि हां, तो कैसे?

साहित्य मानव की मूल संवेदना की भावात्मक अभिव्यक्ति है जिसमें कवि का अहं विगलित होकर सामाजिक, रासायनिक प्रक्रिया से परिशुद्ध होकर कुंदन बनकर निकलता है. इस प्रक्रिया में थोड़ी सी अनवधानता या त्रुटि होने पर उसकी गुणवत्ता निश्चित रूप से प्रभावित होगी ही. जब साहित्यिक मूल्य विभिन्न वादों या सिद्धांतों के हाट में निर्धारित होने लगें तब प्रतिस्पर्धा की झंझा में उसकी स्वायत्तता का बिखराव अदम्य वेग से बहते वर्षाकालीन जल प्रवाह के सदृश स्वाभाविक है. साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ ही उसके स्वस्थ निर्माण का एक कारक भी होता है. यह सदा स्मरण रखना होगा कि साहित्य का स्तर साहित्यिक रहे, वर्ण-जाति-रंग-राजनीतिक व्यवस्थाएं उस पर हावी होकर उसके कलेवर को खंड-खंड कर तिरोहित न कर दें. सुधी विचारक जब इस ओर ध्यान देने लगेंगे तभी से साहित्य की स्वायत्तता अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति में सफल होगी.

• संस्कृत-अध्यापन अवधि में हिंदी लेखन और हिंदी अध्यापन अवधि में संस्कृत लेखन काल में क्या आपको भी पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. विद्या निवास मिश्र की भांति हिंदी-संस्कृत पंडितों के विरोध का दंश सहना पड़ा?

इस श्रृंखला में दो नाम मैं और जोड़ना चाहूंगा. अंग्रेजी के उद्भट विद्वान प्रोफेसर डॉ. फिराक गोरखपुरी एवं डॉ. रामविलास शर्मा, उर्दू के महाकवि फिराक ने 'निराला', 'पंत' आदि की कविताओं की खिल्ली उड़ाई तो शर्माजी ने फिराक के कवित्व और भाषायी ज्ञान पर ही प्रश्न चिन्ह लगा दिया. बरसाती नदी के वेग के समान धीरे-धीरे सभी शांत. पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. विद्यानिवास मिश्र से पूर्व पंडित अंबिका दत्त व्यास ऐसे दुराग्रहियों का मुख मुद्रण कर चुके थे. इसी प्रकार इन दोनों महापंडितों ने अहंमण्य मत्सरियों को 'धोबीपाट' लगाकर पछाड़ दिया था. मुझे एक संस्कृत के महापंडित, 'नूतन' उपनाम धारी, ने मेरे एक निबंध की शल्य क्रिया करते हुए ललकारा था. मेरे द्वारा 'नूतन शंका समाधान' शीर्षक से उत्तर प्रकाशित करा देने के पश्चात उनका विरोध मित्रता में परिणत हो गया. हिंदी वालों से मुझे सदैव आदर एवं स्नेह मिला है. संस्कृत मंडली भी मुझ पर अपना विशेषाधिकार समझती है.

• नयी पीढ़ी के साहित्यकार समय की आंधी में तिनके से क्यों बहे जा रहे हैं? क्या साहित्य को पुराना स्वरूप दिलाने के लिए साहित्यिक क्रांति आवश्यक है?

वस्तुतः साहित्य सर्जना एक साधना है, तपस्या है. सागर में गहरे उतर कर मोती ढूंढ़ लाने की सायास उपलब्धि है, युंजान योगी की सविकल्प समाधि है, आत्मा का अन्वेष है और इसके अपरिहार्य साधन हैं उपनिषद् में बतलाये गये- श्रवण, मनन और निदिध्यासन. वटवृक्ष बनने के लिए बीज को मिट्टी और पानी के मध्य गलने की अनिवार्यता के सदृश विषयवस्तु के साथ तदाकारता-तादात्म्य के परिणाम स्वरूप जो साहित्य नवनीत प्राप्त होता है उसे देश-काल की आंधी-बरसात मिटा नहीं सकती. हां, समय और परिवेश के अनुसार उसके रूपाकार और अभिव्यक्ति में परिवर्तन लक्षित किया जा सकता है परंतु उसका लक्ष्य मानवीय संवेदना-भावजगत् तो यथावत् रहेगा ही. साहित्यकार की पंक्ति में अपना नाम लिखाने को उतावले, अधकचरे, अपरिपक्व मस्तिष्क वाले, आत्मप्रवंचना के रोगी ही आधारहीनता या वादग्रस्तता के हल्केपन के कारण समय की आंधी में गुम होने की भाग्यरेखा लिखा कर आते हैं. सच्चे साहित्यकार की निर्व्याज-मनोहर कृतियां कालजयी होती हैं. साहित्य की आत्मा पुरानी नहीं होती, नवीनता-पुरातनता तो शरीर के धर्म हैं. यदि नयी पीढ़ी आत्ममंथन की इस दिशा की ओर अग्रसर हो अपनी रचनाधर्मिता का पल्लवन करे तो यह स्वयं में एक नयी साहित्यिक क्रांति होगी.

• कृपया अपने कृतित्व के विषय में संक्षेपतः प्रकाश डालने की औपचारिकता निर्वाह का आग्रह स्वीकार करें.

सर्वप्रथम, प्रमुख कहानियों से प्रारंभ करता हूं. 'मेरे गुरूजी' में आदरणीय गरिमा के पर्दे की आड़ में स्त्री व्यापारी, मदिराव्यसनी व्यक्तित्व के खोखलेपन, 'आहत गुरुता' में शिक्षा मंदिरों में व्याप्त छात्र, प्राध्यापक, प्राचार्य एवं प्रबंधक के मध्य की स्वार्थिक

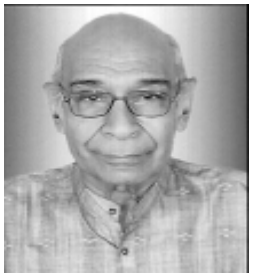

डॉ. शंभुनाथ आचार्य

ग़ज़ल

वक़्त धोखा इस तरह दे जायगा सोचा न था,
आदमी इस हद तलक गिर जायगा सोचा न था।
स्वर्ग धरती पर उठा लाने की कोशिश में स्वयं,
आदमी ही स्वर्ग को उठ जायगा सोचा न था।
सींच कर अपने पसीने से जिसे पाला किये,
बागवां उस फूल से छल जायगा सोचा न था।
हम बनाते ही रहे नक्शा नये निर्माण का,
मृत्यु में निर्माण यों ढल जायगा सोचा न था।
वक़्त की जादूगरी समझा न कोई आज तक,
कब कहां कैसे सभी छूट जायगा सोचा न था।

गीत

मेरी असफलता पर मुक्त हंसी आती पर
अपनी दुर्बलता पर सोने की चादर है।
कहना जो होता है कहता दुर्भाव विना
सच सच कह देने की अपनी कुछ आदत है,
अंधियारा धरती को रंग देता अपने में,
सूरज की भेद खोल देने की आदत है।
मेरे लंगड़ेपन पर हो कटाक्ष करते पर
अपने लूलेपन पर रेशम की चादर है॥
कांटों के तेवर से होता भयभीत नहीं
फूलों की जागृति पर मस्तक झुक जाता है,
लहरों के संग कभी गीत नहीं गा पाया
तूफां में साहस का दीपक जल जाता है।
मेरे हकलेपन पर हो कटाक्ष करते पर
अपने गूंगेपन पर मौन का समादर है॥
मन में जो उभरी औ सांसों में उफनाई
पीर कभी शब्दों में जब जब दुहराई है,
फूलों पर शबनम की बूंदों से क्षणभर में
झर कर रेतीली चट्टान में समाई है।
मेरे उपवन की तो गंध नहीं भाती पर
अपनी मरुभूमि में चंदन का सागर है॥

५/३०, छक्कालाल स्ट्रीट, .फर्रुख़ाबाद (उ.प्र.), २०९६२५. फोन : ०५६९२-२२४६१२

राजनीति, 'आभा' में अंतर्जातीय विवाह की सामाजिक स्वीकृति-अस्वीकृति संघर्ष, 'अलका' में त्रिकोणात्मक प्रेम-संघर्ष, 'तांत्रिक' में अंधविश्वास की दुष्परिणति, 'वीर सैनिक' में भारतपाक युद्ध में अमेरिकी जेट विमानों को विध्वंस कर अपने राष्ट्र की रक्षा करनेवाले वीर सैनिक के बलिदान एवं 'महारानी' में नायिका के माध्यम से इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री पद को पाना, बांगलादेश निर्माण में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करना और आपातकाल में विपक्षियों के प्रति अनैतिक व्यवहार आदि विषयों को उभारा गया है.

'कामदाह' काव्य में दग्ध काम की अनश्वरता, 'विधवा' में उसके प्रति समाज की खूंखार दृष्टि और उसकी विवशता, 'देवि गंगे' में क्षरित होती हुई उसकी अस्मिता और शासन की बधिरता-मूकता, 'मानस के राजहंस' में तुलसी के महनीय कवि व्यक्तित्व, 'छंदोवीथी' में पारंपरिक शैली में नव्य विधान, 'गीत गुंजार' और 'नवनीत गुंजन' में क्रमशः व्यक्तिपरक गीत एवं छंदोमुक्त शैली के गीत, 'आप अपने से परेशां क्यों है.' में विविध गजलें, 'हर एक विवश होता है', में दार्शनिक चिंतनप्रधान विषय चर्चित हुए हैं.

निबंध प्रायः आलोचनात्मक एवं व्यक्तिपरक हैं. तुलसी, प्रेमचंद्र, किशोरीदास वाजपेयी, महामना मालवीय आदि व्यक्तिपरक होकर भी समीक्षा प्रकृति के ही हैं. मम्मट का लक्षणा विवेचन, माघ का बिंब विधान, मेघदूत में प्रकृति, मानस में काव्यशास्त्री संकेत आदि विशुद्ध आलोचनात्मक हैं. 'बोरियत : एक नया रस' नयी कविता पर व्यंग्य परक लेख है. ये सभी निबंध 'आलोचना की छाया' में संकलित हैं. संपादित कृतियों के भूमिकात्मक लेख इसी श्रेणी के हैं.

• आपके निर्देशन में शोध-उपाधि पानेवाले कतिपय शिष्यों के नाम बताने का अनुरोध स्वीकार करें.

डॉ. शिवओम अंबर डॉ. अमरनाथ तिवारी, डॉ सुषमा (फ़र्रु.), डॉ. ओम प्रकाश दीक्षित (आगरा), डॉ. ममता गंगवार (कानपुर), डॉ विनोद कटियार (बांबे बड़ौदा), डॉ. वर्षा शुक्ला (अहमदाबाद), डॉ. राम कुमार वर्मा (पीलीभीत), डॉ. सुनीता (बरेली), डॉ. स्तुति यादव (फ़र्रु.) आदि. इतने हैं शोधरत.

• आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर भी शोधकार्य होने की चर्चा है. कुछ बताने का कष्ट करें

आपने सही सुना है. तीन शोध प्रबंध लिखे जा चुके हैं, चौथा प्रस्तावित है. उनके शीर्षक हैं-

१. 'आचार्य शंभुनाथ मिश्र : व्यक्तित्व और कृतित्व' (लघु शोध)

२. 'स्वातंत्र्योत्तर संस्कृत काव्य एवं काव्यशास्त्र के संदर्भ में आचार्य शंभुनाथ मिश्र के कृत्वित्व का आलोचनात्मक अध्ययन' (पी.एच.डी.शोध).

३. 'संस्कृत गीत-परंपरा में आचार्य शंभुनाथ मिश्र : एक आलोचनात्मक अध्ययन' (पी.एच.डी.शोध).

४. 'डॉ. शंभुनाथ आचार्य के काव्य का वक्रोक्ति-परक अनुशीलन' (प्रस्तावित).

• कवि सम्मेलन मंचों पर भी आपने काव्यपाठ किया है. दूरदर्शन एवं आकाशवाणी केंद्रों से भी आपके काव्य, कहानी एवं वार्ताएं प्रसारित हुई हैं. आपका अनुभव कैसा रहा?

मुझे हिंदी एवं संस्कृत कवि सम्मेलनों में भागीदारी के अनेक अवसर मिले, मान-सम्मान भी मिला किंतु खटकनेवाली जो बात मन को सालती रही वह कवियों-संयोजकों की गुटबंदी, जिसमें प्रतिभा तिरस्कृत और चाटुता समादृत होती है. दूरदर्शन की अपेक्षा आकाशवाणी से अनपेक्षित रूप से भरपूर उत्साहवर्धक सहयोग मिला, विशेषतया संस्कृत साहित्य सर्जना के प्रति. हिंदी अध्ययन, अध्यापन, लेखन की व्यस्तता भी बाधक न बन सकी.

• आपकी प्रतिभा अनेकत्र सम्मानित हुई है. कृपया कुछ उल्लेख करें?

विक्रम विश्व विद्यालय, वाराणयेय विश्व विद्यालय, रूहेलखंड विश्वविद्यालय तथा इनसे संबद्ध अनेक महाविद्यालयों में आमंत्रित वक्ता; मानव संसाधन मंत्रालय, उ.प्र.संस्कृत संस्थान द्वारा पुरस्कृत; संस्कृत विद्वत् परिषद् हिंदी प्रचारिणी सभा, राष्ट्रभाषा परिषद; हिंदी साहित्य सम्मेलन, महादेवी स्मृतिपीठ आदि संस्थाओं द्वारा अभिनंदित-सम्मानित एवं कवि रत्न, साहित्य रत्नाकार, साहित्य भूषण आदि मानद उपाधियों से समलंकृत.

• इस अवस्था में साहित्यिक गतिविधियां कैसी चल रही हैं.

अब तो किसी गांव के चौराहे का मैं बूढ़ा बरगद हूं.

जे.पी.टंडन 'अलौकिक'

२/१४७ मो. खतराना, फ़र्रुख़ाबाद (उ.प्र.)

आमने-सामने

(पृष्ठ ३६ का शेष भाग)

इसी दौरान कानपुर के एक आयोजन के दौरान मेरी ग़ज़लें सुनकर आदरणीय कन्हैयालाल नंदन जी ने उसी समय उन्हें मुझसे लिखवा कर ले लिया तथा 'सारिका' में बड़े सम्मान के साथ प्रकाशित किया.

मेरी नियति ने मुझे ज़िंदगी का एक पथ दे दिया था. ''धर्मयुग'', ''सारिका'', ''सा. हिंदुस्तान'' में नियमित प्रकाशन मुझे साहित्यकारों का सौहार्द दिलवा रहा था, कवि-सम्मेलनों में मुझे साहित्यिक संचालन के मानक के रूप में देखा जाने लगा था, मंच मुझे प्रतिष्ठा भी दे रहा था, पैसा भी. उधर मैं गांव के विद्यालय से नगर आ गया था और सी.टी.ग्रेड से एल.टी.ग्रेड प्राप्त कर अंततः प्रवक्ता भी हो गया था. मैं अपनी शैक्षिक उपलब्धियों से संतुष्ट था किंतु मेरे गुरुजन मुझसे कुछ और भी चाहते थे. गुरुवर आचार्य डॉ. शंभुनाथ मिश्र के आदेश के अनुपालन में मुझे पी-एच.डी. के लिए पंजीकरण कराना पड़ा और उनके द्वारा निरंतर प्रबोधित किये जाने के परिणामस्वरूप मैं उसे पूर्ण भी कर सका. मेरे दोनों बच्चे (उत्कर्ष और अस्मिता) अक्सर कहते हैं कि पिताजी की पूरी ज़िंदगी दो शब्दों के कोष्ठक में समाहित है - संयोगवश, सौभाग्यवश!

धीरे-धीरे मेरे लेखन की दिशा, भाषा और भंगिमा बदल गयी. 'आराधना अग्नि की' मेरा पहला ग़ज़ल सग्रह था. और मेरे सद्यः प्रकाशित गीत-संग्रह का नाम है- 'शब्दों के माध्यम से अशब्द तक'. ये दोनों नाम ही सृष्टि और दृष्टि में परिवर्तन के प्रमाण हैं. मेरी समग्र ज़िंदगी की गाथा यह है-

अर्घ्य भी अर्पित हुए अवहेलनाएं भी मिलीं,
वो सभी में एकरस ख़ामोश था ख़ा१मोश है।
व्यावहारिकता उसे आयी नहीं भायी नहीं,
गीत का अंतःकरण मदहोश था मदहोश है।

तथा पूर्ण आत्मविश्वास के साथ अक्सर यह गुनगुनाता हूं-

गीत का जलता दिया है वंशधर दिनमान का,
घुप अंधेरे में हमारे पास इक संबल तो है।
बात अंबर की चली तो गांव में सबने कहा,
निष्कलुष बेशक न हो वो आदमी निश्छल तो है।

४/१०, नुनहाई, .
फर्रुख़ाबाद (उ.प्र.), २०९६२५,
फोन : ९४१५३३३०५९

वातायन

''आओ एक भव्य और विशाल मूर्ति स्थापित करें!''

✍ **कुमार केतकर**

(यह लेख इंडियन एक्सप्रेस ग्रुप द्वारा प्रकाशित मराठी समाचार-पत्र **लोकसत्ता** में ४ जून २००८ को छपे संपादकीय का भाषांतर है. दूसरे दिन, विरोध स्वरूप ५ जून को लोकसत्ता के संपादक श्री कुमार केतकर के घर पर राष्ट्रवादी कॉन्ग्रेस के कुछ लोगों द्वारा पत्थरबाजी की गयी.)

ऐसा लग रहा है कि महाराष्ट्र की सभी समस्याओं का हल ढूंढ़ लिया गया है. लोग केवल खुश और संतुष्ट ही नहीं हैं बल्कि एक सुनहरे भविष्य की कल्पना में डूबे हुए हैं. राज्य के सभी किसान ऋण मुक्त हो गये हैं, न कहीं कोई आत्महत्याएं हो रही हैं और न ही कुपोषण से कोई मर रहा है. सभी बच्चे स्कूल जाने लगे हैं, उद्योग और ज्ञान के क्षेत्र में अतुलनीय वृद्धि हुई है, बेरोज़गारी पूरी तरह समाप्त हो गयी है और सभी शिक्षितों को रोज़गार मिल गया है. यह प्रश्न ही नहीं उठता कि कोई अनपढ़ या अकुशल व्यक्ति बेरोज़गार है क्योंकि ऐसा कोई आदमी बचा ही नहीं है. सभी नदियां और उन पर बने छोटे-बड़े बांधों ने अधिकांश ज़मीन को सींच दिया है, यहां तक कि प्रांत का वृष्टि की छाया में न आनेवाला सूखा क्षेत्र भी सिंचित हो गया है. स्वाभाविक है कि खाद्यान्न की कोई कमी नहीं है, दरअसल अब महाराष्ट्र में आवश्यकता से अधिक खाद्यान्न उत्पादित होने लगा है. कहीं बिजली की लोडशेडिंग नहीं है, न केवल नारीमन-कोलाबा ही चमाचम है बल्कि पूरा प्रांत रोशनी में जगमगा रहा है. डॉ. अभय बंग द्वारा आरोग्य-स्वराज्य को बढ़ावा देने के कारण सब लोग निरोगी हो गये हैं और औसत जीवनकाल अब १०० वर्ष हो गया है.

इतनी महान सफलता राज्य सरकार की दूरदर्शिता, नेतृत्व, निष्ठा और लगन के बिना कतई संभव नहीं थी. इसका सारा श्रेय मुख्यमंत्री विलासराव देशमुख और उप-मुख्यमंत्री आर.आर.पाटिल को जाता है. इसीलिए पूरा प्रांत उनके नेतृत्व को सलाम कर रहा है. दरअसल, यही कारण है कि राज्य के लोग बहुत ज़्यादा खुश हैं कि दोनों कर्णधारों ने नारीमन पाइंट से समुद्र में, लगभग एक किलोमीटर दूर, क्षत्रपति शिवाजी महाराज की एक विशाल मूर्ति स्थापित करने की एक बृहद परियोजना के संबंध में निर्णय लिया. सरकार ने तय किया है कि मूर्ति न्यूयॉर्क के बंदरगाह की स्वतंत्रता की देवी (लिबर्टी) की प्रतिमा की अपेक्षा अधिक भव्य और ऊंची होगी.

इस तरह की मूर्ति की स्थापना के बारे में कॉन्ग्रेस व राष्ट्रवादी कॉन्ग्रेस द्वारा प्रथम बार चार वर्ष पूर्व सोचे गये विचार को समस्त मराठी माणुसों ने स्वागत किया है. इस तरह के स्मारक की आवश्यकता समय की एक ज़रूरी मांग थी जिससे सारे विश्व को यह मालूम पड़े कि महाराष्ट्र वीरों और राष्ट्रभक्तों का राज्य है और इस भावना के प्रतीक शिवाजी महाराज हैं. यही कारण था कि विक्टोरिया टर्मिनस का नाम बदल कर छत्रपति शिवाजी टर्मिनस (सी.एस.टी) रखा गया था. नामांतरण के तुरंत बाद, सहसा गाड़ियां समय पर चलने लगीं, रेल्वे में भ्रष्टाचार ख़तम हो गया, योरप की सबर्बन ट्रेनों की तरह ही मुंबई की लोकल ट्रेनों में यात्रा करना आरामदेह हो गया, और दुर्घटना होना भी बंद होगया. यह सब क्या शिवाजी महाराज के नाम की कीर्ति के बिना संभव था? इसके पश्चात सरकार और महाराष्ट्र के निवासियों ने मुंबई के राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय दोनों हवाईअड्डों के नाम बदलने का बीड़ा उठाया. अब दोनों का नामांतरण छत्रपति शिवाजी महाराज हवाई टर्मिनल हो गया है. जैसे किसी ने जादू की छड़ी फेर दी हो, हवाईअड्डे बहुत कार्यक्षम हो गये, सभी कर्मचारी, यात्रियों से आदरपूर्वक व्यवहार करने लगे, उड़ानें समय पर आने-जाने लगीं, टेक-ऑफ्स और लेंडिंग्स पूरी तरह से ठीक होने लगीं. लेंडिंग के लिए जगह ढूंढ़ने के लिए वायुयानों को आकाश में व्यर्थ मंडराने की आवश्यकता भी नहीं रह गयी. इन बातों पर कौन विश्वास कर सकता था यदि लोगों ने स्वयं ऐसा अनुभव न किया होता? क्या यह बिना शिवाजी महाराज के नाम के चमत्कार के संभव था?

यह स्वाभाविक था कि जनता की सभी समस्याओं का समाधान खोज लेने के बाद सरकार ने महसूस किया कि अब पूरे विश्व को शिवाजी की महानता से परिचित कराना ही शेष रह गया

है. सरकार ने निर्णय लिया कि समुद्र के भीतर लगभग एक एकड़ ज़मीन अधिकृत करके पाटी जाये और उस पर शिवाजी का स्मारक बनाया जाये. इस तरह विदेशी पर्यटकों को आकर्षित किया जा सकेगा. इन पर्यटकों को सभी सुविधाएं उपलब्ध करायी जायेंगी. मूर्ति के पास एक संग्रहालय बनाया जायेगा जिसमें १७वीं शताब्दी की प्राचीन वस्तुएं रखी जायेंगी, जिनमें शिवाजी की निजी चीज़ें होंगी जैसे, तलवारें, ढालें और परिधान आदि. शिवाजी द्वारा दिये गये उन आदेशों को भी प्रदर्शित किया जायेगा जिनमें जनता को खुश रखने और अच्छे शासन करने के गुरों का वर्णन होगा. संग्रहालय के समीप ही शॉपिंग माल होंगी जिनमें शिवाजी की पेंटिंग वाली टी-शर्ट बिक रही होंगी. शिवाजी की की-चेन्स, उपहार की चीज़ें, कांटे-छुरी आदि भी बिकेंगे.

हां, बियर बार नहीं खोले जायेंगे. स्वभावतः डान्स बार भी वहां नहीं खुलेंगे क्योंकि उप-मुख्यमंत्री को ये कतई पसंद नहीं हैं. शायद वाइन उपलब्ध हो सकेगी क्योंकि बकौल राष्ट्रवादी नेता श्री शरद पवार के वाइन शराब नहीं होती. तो कोकाकोला, पेप्सी और अन्य सॉफ्ट ड्रिंक्स की तरह रेस्ट्रां में वाइन बिकेगी और परोसी जायेगी. स्वदेशी मैकडॉनल्ड भी मिलेगा. साथ में मराठी वड़ा-पाव जिसका उद्धव ठाकरे ने नया नामकरण किया है, शिव ''वड़ा-पाव'' भी मिलेगा. ''पानी पुरी'' भी मिलेगी जिसे राज ठाकरे की महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना के कार्यकर्त्ता ही बेचेंगे क्योंकि किसी भी भइय्या को धंधा नहीं करने दिया जायेगा, सिर्फ स्थानीय लोगों को ही यह धंधा करने का अधिकार होगा.

स्मारक महाराष्ट्र की जनता के साथ-साथ मुंबई आनेवाले हर किसी को प्रेरणा देगा. दुनिया घूमनेवाले विदेशी पर्यटक अपने-अपने देशों में शिवाजी महाराज का संदेश लेकर जायेंगे, महाराष्ट्र राज्य की ख्याति के बारे में बतायेंगे जहां का प्रत्येक व्यक्ति खुश और संतुष्ट है. यह धरती का आदर्शतम स्थान है और यदि कोई आदर्श नमूना देखना चाहे तो उसे विलासराव-आर.आर. पाटिल द्वारा सृजित यह नमूना देखना चाहिए. इन दोनों के अलावा क्या किसी अन्य को इतना अनूठा विचार आ सकता था?

स्मारक बहुत शीघ्र तैयार हो जायेगा. वर्ष २०१० में १ मई को महाराष्ट्र अपनी स्वर्ण जयंती मनायेगा. समुद्र में स्थित इस मूर्ति से बढ़कर, क्या शिवाजी महाराज की महानता, वीरता और कीर्ति का क्या किसी अन्य प्रकार से अभिनंदन हो सकता था? भव्य मूर्ति सभी आतंकवादियों को ख़बरदार करती रहेगी कि महाराष्ट्र से दूर रहो, यहां तक कि भारत की ओर आंख भी न उठाना क्योंकि महाराष्ट्र के लोग भारत के रक्षक हैं और महान भारत के विचार को बढ़ावा देते हैं!

भाषांतरकर्ता : **डॉ. अरविंद, सं. ''कथाबिंब''**

लघुकथा

सुदामा की ग़रीबी

✍ **रामकुमार आत्रेय**

'सुदामा! मेरे मित्र, तुम और इस हालत में?' अचंभित होकर पूछे बिना नहीं रह सके द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण.

'हां महाराज, मैं ही हूं आपका ग़रीब मित्र सुदामा.' गर्दन ऊपर उठाये बिना ही उत्तर दिया था सुदामा ने.

'मजाक छोड़ो सुदामा. मैं महाराज नहीं, तुम्हारा चिर-परिचित मित्र हूं किशन. किशन कहो तुम मुझे. और यह क्या हाल बना रखा है तुमने? बदन पर वही पुरानी धोती, पांवों में टूटी हुई जूतियां, हाथ में वही पुरानी लाठी और काख में दबाये हो वैसी ही पोटली जिसमें तुम मेरे लिए लाये थे तीन मुट्ठी चावल! मुझे तो विश्वास ही नहीं हो रहा. यह अभिनय कला तुमने कहां से सिखी सुदामा? कृष्ण ने सुदामा को अपनी छाती से लगाते हुए कहा.

'यह सब अभिनय नहीं, वास्तविकता है महाराज.'

'वास्तविकता? क्या तुम्हें वह सुंदर और विशाल भवन नहीं मिला जिसे मैंने तुम्हारी अनुपस्थिति में तुम्हारी झोपड़ी की जगह बनवा दिया था? तुम्हारी पत्नी और बच्चे उसी भवन में रहने लगे थे मित्र. किसी भी तरह का कोई भी अभाव मैंने वहां नहीं छोड़ा था.'

'ठीक कह रहे हैं आप महाराज. जब तक मैं वहां पहुंचा गुंडों ने मेरी पत्नी और बच्चों को बाहर निकालकर उस भवन पर कब्जा कर लिया था. हमारी तो झोपड़ी भी जाती रही महाराज. गुंडों को वहां के बाहुबली विधायक का आशीर्वाद प्राप्त है. पुलिस और प्रशासन गुंडों का साथ दे रहे हैं. सुदामा तो पहले ही ग़रीब था, आज भी ग़रीब है और आगे भी ग़रीब ही रहेगा, महाराज!' ऐसा कहते हुए सुदामा फूट-फूटकर रोने लगा.

✆ **८६४-ए/१२, आजाद नगर, कुरुक्षेत्र-१३६११९**

बाइस्कोप

'पंजाब की हीर' : अमृता प्रीतम

✍ सविता बजाज

(साहित्य और फ़िल्म का चोली दामन का साथ है. हमारे विशेष अनुरोध पर जानी मानी फ़िल्म, टी. वी., मंच कलाकारा व पत्रकार सुश्री सविता बजाज 'कथाबिंब' के लिए चलचित्र जगत से संबद्ध साहित्यकारों के साथ बिताये क्षणों को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं. अगले अंकों में पढ़िए- राजेंद्र सिंह बेदी, इस्मत चुगताई, के. ए. अब्बास आदि के बारे में.)

मैंने जबसे जवानी की दहलीज़ पर क़दम रखा था, सुविख्यात लेखिका अमृता प्रीतम की लेखनी ने दीवाना बना दिया. शायद ही इनकी लिखी कोई किताब हो जिसने मेरे ज़ज़्बातों को झंझोड़ कर न रख दिया हो या पात्रों की यादें ज़हन में रच बस न सकी हों. लगता था अमृता जी ने किसी न किसी पात्र को जिया हो या उन पात्रों के बीच पनपी हो. कमाल था उनकी लेखनी में. आप कविताएं भी खूब लिखती थीं, सुननेवाले श्रोता या पढ़नेवाले पाठक के दिलो दिमाग़ पर ज़िंदगी की अमिट लकीरें खिंच जाती थीं.

मैं जब दिल्ली में थी और एन. एस. डी. में थ्येटर की पढ़ाई कर रही थी तो मंडी हाउस उन दिनों अमृता जी की मन पसंद जगह थी. एक पतली दुबली, कंटीले नैन नक्शवाली, सांवली सलोनी अमृता पंजाब की हीर लगती थी और पेंटर इमरोज़ की ख़ास दोस्त थी. 'त्रिवेणी कला संगम' में इमरोज अपनी कृतियों की नुमाइश लगाता और अमृता दिन भर उसके साथ बनी रहती. दोनों के प्यार के चर्चे खूब मशहूर थे. मैं भी कभी कभार वहां जाती क्योंकि मैं भी शारदा ऊकिल स्कूल ऑफ आर्ट्स से पेंटिंग का कोर्स कर रही थी. लिहाजा हम दोनों में थोड़ी दोस्ती हो गयी. एक दूसरे के बारे में जानने की इच्छा बन गयी. अमृता जी कभी-कभी एन.एस.डी. में भी अपना कविता पाठ करने आतीं, तो मैं मंत्रमुग्ध होकर उन्हें निहारती रहती. बहुत कशिश थी उनके कविता कहने के अंदाज में. मुंबई आने पर भी मैं उन्हें कभी न कभी पत्र लिखती. वक़्त के साथ-साथ पत्रों का सिलसिला कम हो गया और सुना वे बीमार रहने लगी थीं. मैं चाह कर भी अमृता जी से यह न जान सकी कि

इमरोज से बेपनाह मोहब्बत, फिर शादी का बंधन क्यों नहीं ! एक ही घर में रहना लेकिन छत जुदा-जुदा क्यों? न जान पायी. ''पिंजर'' फ़िल्म बनी तो मुझे भी उसमें एक छोटी सी भूमिका मिली. फ़िल्म को बहुत से अवार्ड तो मिले लेकिन दर्शकों ने फ़िल्म को नकार दिया. मैंने भी अंधेरी के एक हाल में फ़िल्म देखी जहां मात्र आठ दर्शक थे. फ़िल्म ''पिंजर'' में पिंजर तो था लेकिन बग़ैर रूह के, मैं समझ न पायी! अमृता जी के उपन्यास 'पिंजर' ने मुझे हमेशा झकझोरा. फिल्म में ऐसा क्यों न हो सका! मैं बहुत मायूस हो गयी थी, उनके लिए. पता नहीं, उन्होंने फ़िल्म देखी या नहीं. शायद वह बीमार थीं. उन दिनों जब फ़िल्म का निर्माण हुआ. आप मुंबई भी आयी थीं, अपना भाग्य आजमाने. साहिर लुधयानवी से काफ़ी दोस्ती थी उनकी ऐसा लोग बताते थे. लेकिन वह खाली हाथ लौट गयीं दिल्ली जहां उन्होंने अपना आशियाना बनाया.

अफ़सोस होता है मुझे यह सोचकर कि चाह कर भी दिल्ली में उनसे मिल न सक़ी और वे भी चाह कर मुंबई दोबारा न आ सकीं.

✍ **पोस्ट बॉक्स १९७४३, जयराजनगर,**
बोरिवली (प.), मुंबई- ४०००९१.
मो. : ९२२३२०६३५६

'कथाबिंब' के नये आजीवन सदस्य

१६३) श्रीमती उषा चौबे, मुंबई
१६४) श्रीमती सावित्री नौटियाल काला, देहरादून
१६५) श्री पी. डी. वाजपेयी, मुंबई
१६६) डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, इंदौर
१६७) श्री हरिओम सोनी, भोपाल
१६८) श्रीमती सुधा अरोड़ा, मुंबई
१६९) डॉ. के. वी. नरसिंहराव, मुंबई
१७०) डॉ. कैलाश उत्तम, इलाहाबाद
१७१) श्रीमती रेनू सिंह, इलाहाबाद
१७२) जीवन प्रभात विमला पुस्तकालय, मुंबई

पुस्तक-समीक्षा

प्रकृति से सीधा साक्षात्कार

✍ रमेश कपूर

पैरों तले पहाड़(यात्रा- संस्मरण) : **मलिक राजकुमार**
प्रकाशक : कांती पब्लिकेशन्स, दिल्ली- ११००५३
मू. २००/-

वर्तमान में जबकि हिंदी लेखकों में अचानक ही बृहत्तर रूप में अपने संस्मरणों के प्रति प्रेमभाव और आकर्षण उभर आया है, यात्रा-संस्मरण अभी भी हाशिये से बाहर की चीज़ प्रतीत होती है. हालांकि इस क्षेत्र में भी कई साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण कार्य किये हैं. रांगेय राघव के यात्रा-संस्मरण (जिसे उन्होंने घुमक्कड़ शाखा का नाम दिया है) अपने-आप में मुकम्मल रचनाएं हैं. कुछ ऐसी ही रचनात्मकता हमें मोहन राकेश के 'आख़िरी चट्टान' तक में दिखाई पड़ती है. उपेंद्रनाथ अश्क ने अपने 'यात्रा-भीरू' होने के बावजूद यात्रा-विवरण लिखे हैं. लेकिन बाक़ायदा यात्रा-संस्मरण के रूप में नहीं अपितु नाते-रिश्तेदारों और मित्रों को पत्रों के रूप में, जो 'धर्मयुग' जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर अश्क जी की वर्णन-क्षमता, सूक्ष्म अंतर्दृष्टि और घटनाओं-प्रसंगों की बारीक़ पकड़ का एहसास कराते रहे.

रांगेय राघव का तो यह मानना था कि बिना किसी उद्देश्य के पृथ्वी-पर्यटन करना, यह भी छोटा उद्देश्य नहीं है. ऐसी ही कुछ यात्राएं मलिक राजकुमार ने भी की हैं जिसका विवरण हमें ' पैरों तले पहाड़' में देखने को मिलता है. ये यात्राएं कुछ उद्देश्य से थीं तो कुछ निरुद्देश्य भी (निरुद्देश्य बंगला में 'घर से गुम हो जाने' को कहते हैं) उन्होंने गंगोत्री यात्रा को 'प्रवासिनी की ओर' सिक्किम यात्रा को 'कांची के गांव में' तथा असम यात्रा को 'धमाकों के बीच' शीर्षकों में समेटा है.

यूं तो इन यात्राओं की शीर्षक बाध्यता ही इन स्थानों की भौगोलिकता व वातावरण को स्पष्ट कर देती है फिर भी तीनों ही यात्राओं के अनुभव अपना प्रभाव सर्वथा भिन्न ही स्तर पर छोड़ते हैं. एक यात्रा यदि धर्म, दर्शन, रहस्यवाद, प्रकृति और उसके विभिन्न रूपों को अपने में समेटती है तो दूसरी मानवीय संबंध को और संवेदनाओं को जीवंत करती है और असम यात्रा अपने भयावह रूप में वहां की राजनीति और राजनीति से उपजी क्रूरता से परिचित कराती है.

यह सच है कि आदमी अपने साथ एक वातावरण लेकर चलता है, जैसा कि रांगेय राघव ने लिखा भी है और वह वातावरण ही अपने आप में एक अर्थ समेटे चलता है. इस दृष्टि से 'पैरों तले पहाड़' के ज़रिए भी हमें देश, काल, भाषा और संस्कृति से परिचय होता है जो स्वयं में ही एक बड़ा उद्देश्य भी है.

इसके साथ जो सबसे महत्वपूर्ण बात है वह यह कि इन यात्राओं से पाठक इतना अभिभूत हो जाता है कि उसे यही महसूस होने लगता है कि वह स्वयं 'एक यात्रा के अंत के पश्चात दूसरी यात्रा के प्रारंभ' में भागीदार है और उस भागीदारी के एक-एक क्षण को.... एक-एक जीवंत क्षण को अपने अंतराल में उसी शिद्दत से जीता है, जितनी शिद्दत के साथ लेखक ने अभिभूत करनेवाले (....और कभी-कभी आतंकित कर देनेवाले) क्षणों को जिया है.

पाठकों से इस सीधे जुड़ाव का एक कारण यह हो सकता है कि भाषा ओर विवरणात्मकता में जैसा....और जितना परिवर्तन इन दिनों यात्रा संस्मरणों या वृतांतों में परिलक्षित हो रहा है, वह लगभग संस्मरण और कहानी के बीच एक सेतु बनकर उभरता है. शायद यही कारण रहा होगा कि अभी पिछले ही दिनों एक बड़ी पत्रिका के संपादक ने एक नये लेखक की कहानी को 'यात्रा विवरण' स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित किया.

'पैरों तले पहाड़' के इन यात्रा-अनुभवों में हमें जहां ग्लेशियरों .... पहाड़ों और जंगलों के प्राकृतिक सौंदर्य के दर्शन होते हैं, वहीं बरसात में चट्टानें खिसकने .... पहाड़ों के टूटने .... और विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं से सीधी भिड़ंत भी मिलती है, जहां जीवन और मृत्यु के बीच का अंतराल मात्र एक क्षण के हज़ारवें हिस्से में लिये गये त्वरित निर्णयों के बराबर रह जाता है. यह सीधा मृत्यु से साक्षात्कार की तरह है. जिसके बीच में से होकर निकलने ....और अपने गंतव्य तक पहुंचने की एक 'बेवकूफ़ाना' कोशिश या ज़िद (क्षमा कीजिए, यहां यह 'बेवकूफ़ाना ज़िद' बहुत जायज़ प्रतीत होती है) अपने-आप में एक दिल दहला देनेवाला अनुभव भी हैं. ...और उसके पश्चात विजित होने का भाव मन में आत्मसंतोष अथवा संतुष्टि प्रदान कर देनेवाला क्षण होता है.... और इन क्षणों को भरपूर जी लेने में ही जैसे जीवन का सच्चा आनंद झलकता है.

किंतु इस यात्रा-संस्मरण को पूरा पढ़ चुकने के पश्चात एक बात मन को कचोटती है कि लेखक ने इन बेहद रोमांचक क्षणों को समेटने के प्रलोभन में इन स्थानीय संस्कृतियों ...सभ्यताओं ...उनके इतिहास. और इस इतिहास से निकली विभिन्न सामाजिक संरचनाओं को बहुत सूक्ष्मता से छूने का प्रयास नहीं किया है. वह सदैव दौड़ते क्षणों के बीच अगले पड़ाव को

तलाशने में जुटा दिखा और वहां यत्र-तत्र फैले विचारों-विमर्शों को पीछे छोड़ कर चलता रहा. यदि यहां थोड़े धैर्य से काम लिया जाता तो कदाचित अधिक संशालिष्टता आ सकती थी. इसके बावजूद इन यात्रा-संस्मरणों को पढ़ कर लगता है कि काश! हम भी लेखक के साथ होते.

ए-४/१४, सेक्टर-१८, रोहिणी, दिल्ली- ११००८९

''पहली उड़ान'' का पहला तजुर्बा ''वाह वाह!''

✍ **डॉ. पुरुषोत्तम दुबे**

पहली उड़ान (लघुकथा संग्रह) : **देवेंद्र गो.होलकर**
प्रकाशक : दिशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर, दिल्ली-११००३५ **मू.** १३०/-

निबंध लेखन में शब्दों की मार सीधी पड़ती है, जबकि लघुकथा लेखन में शब्द कुछ तिर्यक होकर प्रहार करते हैं. काव्य-सृजन में शब्द संवेदना का अमृतपान कर शाश्वत मूल्यों का वितान तानने में यदि चूकते नहीं हैं तो लघुकथा लेखन में गरल पीने की उल्टी गिनती बहाते हुए शब्द यथार्थ की सीवन उधेड़ने से कदापि परहेज नहीं करते हैं. नाटक और एकांकी के लेखन क्षेत्र में कलाकार की प्रतिभा को उभारने में शब्दों को वाचाल होना पड़ता है जबकि लघुकथा में एकदम से शब्द मौन व्रत धारण कर संकेतों को वाचाल बना देते हैं. उपन्यासों और कहानियों में शब्द परजीवी होकर पाठकों की काया में अनुप्रवेश कर जाते हैं जबकि लघुकथा क्षेत्र में शब्द इतने फक्कड़ मिजाजी हो जाते हैं कि साहित्य की अन्यान्य मान्य विधाओं का कोई लिहाज किये बग़ैर सृजन प्रक्रिया में अपने पारदर्शी आचरण का व्यवहार जोड़ देते हैं.

''पहली उड़ान'' का पहला जज़्बा लेकर देवेंद्र गो. होलकर जिन शब्दों के फ्रेम से अपनी चित्रलिखी लघुकथाओं को संवारते हुए मिलते हैं, उनके इन शब्दों में अद्‌भुत सृजनात्मक शक्ति है. लघुकथा लेखन की पहली शर्त ही यही है कि लघुकथा के मुट्ठीभर आकाश में निस्सीम व्योम छलछला उठे. छोटी ज़मीन पर बड़ा खेल खेलनेवाली लघुकथाओं से जब मैं पहली बार रू-ब-रू हुआ था तभी से जैसे एक खलिश मुझ में जागी हुई सी है कि आख़िर लघुकथा में ऐसा क्या है कि लेखन के सौ वर्ष जी चुकने के उपरांत भी उतनी ही ताज़ा होकर आज भी पाठकों को लुभा रही है. इस बात का उत्तर देवेंद्र होलकर की ''पहली उड़ान'' में संकलित उनकी लघुकथाओं को पढ़ने के बाद मुझको मिला है.

कुल जमा इक्यासी लघुकथाओं का इकतारा लेकर देवेंद्र होलकर का बंजारा रचनाकार दत्तचित्त होकर अपनी फेरी पर निकला है कि सहृदय पाठक लघुकथा में कहे उसके प्रयोजन को सही अर्थ में पकड़ सके. इसके लिए सृजन-प्रक्रिया के दरम्यान स्वयं लघु-कथा लेखक को चौकन्ना रहना पड़ता है. देवेंद्र बड़ी शिद्दत के साथ बजरिए अपनी ''पहली उड़ान'' पाठकों की विचार पट्टिका पर उतरते हैं. उनकी लघुकथाओं का एक भी शीर्षक नादान न होकर गंभीर विचार दृष्टि को लिये हुए है. उनकी प्रत्येक लघुकथा का किरीट सृदश फबता शीर्षक सामाजिक और जीवनगत् वैविध्य को निरूपित करता हुआ मिलता है.

संकलन की ''गंदी दीवारें'' लघुकथा गंदेपन से निजात पायी हुई दीवारों की स्वच्छता में निसंतान मां में संतान की अभिलाषा का रंग भरती मिलती है तो ''भावभीनी बिदाई'' लघुकथा आत्म परायेपन का एक दुमुंहा एहसास पाठकों में जगा देती है. ''मातृत्व'' लघुकथा शराबी पति की प्रताड़ना से भटकी नारी बच्चों के मोह के सामने अपनी प्रताड़ना के अर्थ को अर्थहीनता की संज्ञा देकर घर वापसी करती है. ''मरने के बाद'' लघुकथा उस मृतक की अंतिम बिदाई पर नयी साड़ियों के श्रृंगार की बात करती है जिसे जीते-जी कभी नयी साड़ी पहनना मयस्सर नहीं होती है. यहां लघुकथाकार अनिवार्य सामाजिक सराकारों से भिड़ता नजर आता है, मगर हर्फे तसल्ली का एक इंजेक्शन पाठकों की दुखती रग में इस मंतव्य को उजागर करते हुए लगाने में कामयाब हो जाता है कि मृतक का पति भी अपनी मृत्यु के बाद अपने शरीर को भाग्यशाली मानेगा कि जीते जी चिथड़े पहिनने वाले को मरने के बाद नये कपड़े पहिनाये जाते हैं. इस लघुकथा में या तो अफ़सोस, या संवेदना, या परंपरा का विरोध या खटकनेवाली और कोई बात नहीं कही गयी है. मेरा अपना वोट इस लघुकथा के हिस्से में देने में मुझे कुछ आनाकानी सूझ रही है. सबसे अच्छी शीर्षक लघुकथा 'मां' के सम्मुख हर शख़्सियत को दोयम दर्जे में खड़ा करती मिलती है. यक़ीनन मां, मां होती है. चाहे मां जर्जरताओं से घिरी हो या अभावों में जीती हो.

देवेंद्र की लघुकथा 'देवी' मूल्यों के प्रति अनास्था को व्यक्त करती है. बरखिलाफ इसके 'मां ' लघुकथा में लघुकथाकार ने अपने विचारों को अंधविश्वास की ओढनी उठायी है. लघुकथा 'प्रायश्चित' में फूल तोड़नेवाले बालक के अपराध-बोध को ढांपने

की कोशिश की गयी है. लिखित सूचना की अवहेलना करनेवाले के प्रति संवेदना भाव उतना कारगर नहीं लगता, जितना कि प्रताड़ना का भाव.

यही कुछ बानगियां हैं जिन्हें वीक्षा अथवा समीक्षा के नाम पर मैंने देवेंद्र की लघुकथाओं के साथ बतौर छेड़खानी के प्रस्तुत की हैं. इस गर्ज से कि लघुकथा के क्षेत्र में ''पहली उड़ान'' भरनेवाले पायलट रचनाकार को दिशा-विभ्रम का रोग न लग जाय. और मुस्तैदी के साथ अपने चिंतन की चुंबकीय सुई का अनुगामी बनकर वह बेखटके अपने लेखकीय सफर को यूंही कामयाबी का सिलसिला देता रहे.

पुनःश्च देवेंद्र की अन्य लघुकथाएं समाज के कैनवास से ही उतारी गयी हैं. समाज की हर दिशा को बड़े ही दृष्टि संपन्न भाव से देवेंद्र ने पहचाना है और पहचान के इसी बूते पर किसी मेहनतकश शिल्पी की तरह अपनी लघुकथाओं में गहन अर्थवत्ता की आत्मा जिलायी है. लघुकथा को संप्रेषित करनेवाला भाषाई ठाठ देवेंद्र के पास है. शिल्प संबंधी तितलियों को अपनी लेखनी की उंगलियों से पकड़-पकड़ उनको अपनी लघुकथाओं में सजाया है. हज़ार साल में नरगिस को समझनेवाला कोई दीदावर जैसे पैदा होता है, हज़ार पत्र संपादकों को लिखनेवाले देवेंद्र गो. होलकर की लघुकथाएं सचमुच उसी नर्गिस की मानिंद हैं.

✍ **'शशीपुष्प',**
७४-जे/ए,स्कीम नंबर ७१, इंदौर- ४५२००९

लघुकथा में सार्थक 'शब्द संवाद' की पहल

✍ **श्रीराम दवे**

शब्द संवाद (ल. संग्रह): प्रताप सिंह सोढ़ी,
प्रकाशक : स्पूतनिक साप्ताहिक, फिरोज गांधी परिसर, इंदौर
मूल्य : रु. १००/-

पत्र-पत्रिकाओं में साधिकार अपनी उपस्थिति दर्ज़ करा रही तथा नित नये लेखकों द्वारा रची जा रही लघुकथा और प्रकाशित/संपादित लघुकथा संग्रहों से यह तो स्पष्ट हो ही गया है कि हिंदी गद्य परिवार में लघुकथा भी अब सम्मानीय और उल्लेखनीय विधा है. इधर म.प्र. में इंदौर के कई लघुकथाकारों ने निरंतर सृजन से नगर को लघुकथा का मुख्यालय बना दिया है. इसी मुख्यालय से वरेण्य लघुकथा लेखक डॉ. सतीश दुबे, सूर्यकांत नागर, सतीश राठी, सुरेश शर्मा, चैतन्य त्रिवेदी, योगेंद्रनाथ शुक्ल, प्रतापसिंह सोढ़ी जैसे समर्थ रचनाकारों ने अपनी देशव्यापी पहचान बनायी है. यह सुखद है कि ये रचनाकार अभी भी इस लघुकथा विधा को मजबूती से खड़ा करने में संलग्न हैं.

मेरे समक्ष इंदौर म.प्र. के ही वरिष्ठ लेखक कवि प्रतापसिंह सोढ़ी का ताज़ा लघुकथा संग्रह 'शब्द संवाद' है, जिसकी प्रत्येक लघुकथा उस सत्य को उकेरने में सक्षम है जो उसके आसपास पसरा हुआ है. कम शब्दों में अपनी बात कहना तथा विधा की मर्यादा रखना सोढ़ी जी को ख़ूब आता है. यह अलग बात है कि लघुकथा के छोटे कलेवर में संवेदना, उपेक्षा, हास-परिहास से लेकर जीवन मूल्य और उनके खोये जाने से उपजे संत्रास को वे बख़ूबी चित्रित करते हैं. परिचित रिश्तों के बिखरने का चित्रण हो या लघुकथा को बोधकथा की गिरफ़्त से निकालने का उपक्रम, सोढ़ी जी यदि 'अहमियत' लघुकथा को नयी शक्ल देते हैं तो 'गुल्लक' में वे बाल मनोविज्ञान के जरिये चाचा की बुरी आदत पर मानवीय प्रहार भी करते हैं. 'घंटियां' भी संग्रह की इसी श्रेणी की एक अच्छी लघुकथा है. 'वसीयत' में जहां वे दुर्लभ पुस्तकों के समक्ष नक़दी और सोने-चांदी की वस्तुओं की उपयोगिता पर सवालिया निशान जड़ते हैं तो 'शनि महाराज' में धर्मभीरू समाज की सच्चाई बताने में नहीं चूकते हैं. 'जयश्रीकृष्ण' और 'पिता' संग्रह की ऐसी ही लघुकथाएं हैं जिनमें विकृतियों पर चोट करने का शिष्ट साहस किया गया है.

जहां तक इस संग्रह की विशेषताओं का प्रश्न है तो रचनाकार ने लघुकथाओं में अद्‌भुत शब्द संवाद प्रयोग किये हैं, जो कथ्य को पाठक तक पहुंचाने और आत्मसात करने में सहायक ही नहीं होते वरन उसके चिंतन को प्रभावित भी करते हैं. पाठिका में डॉ. सतीश दुबे ने सच ही कहा है कि सोढ़ी जी विधा के परिदृश्य के प्रति सजगता का परिचय देते हुए उन ज्वलंत बिंदुओं को स्पर्श करते हैं जो बहस का मुद्दा बन सकें. 'मां फिर लौट आयी','शहीद की मां','नौकरी छूट गयी', 'दंगा फसाद','स्वाभिमान', 'हक की मजदूरी', 'संरक्षण', 'असली जहर','कर्फ्यू', 'पेटी', 'मोबाईल' आदि इस लघुकथा संग्रह की उल्लेखनीय लघुकथाएं हैं जिन्हें पढ़ा जाना चाहिए. यह संग्रह भले ही सोढ़ी जी की पहली कृति हो किंतु फिर भी तथ्य-कथ्य और सुंदर प्रस्तुति के कारण यह कृति लघुकथा विधा को पुष्ठ और समृद्ध करनेवाली है.

✍ **जी-५ सिंचाई कॉलोनी,**
दशहरा मैदान, उज्जैन

आधुनिकता बोध से परिपूर्ण दोहा संग्रह

✍ शिवकुमार पराग

संदर्भों की आग (दोहा संग्रह): **जय चक्रवर्ती,**
प्रकाशक : उत्तरायण प्रकाशन, लखनऊ.
मूल्य : रु. १५०/-

वैसे तो संक्षिप्तता कविता में सामान्यतः अपेक्षित होती ही है, किंतु दोहा-विधा में इसकी विशेष आवश्यकता पड़ती है. यहां गागर में सागर भरना होता है. यह 'सार-सार को गहि रहे. थोथा देय उड़ाय' वाली विधा है. इसकी बुनावट कसी हुई होनी ज़रूरी है. अति थोरे आखर में अमित-अरथ और अपरिमित काव्यसौंदर्य सिरजना होता है, यहां. यहां की उलटबांसियां भी गहरी होती हैं. हिंदी के पूर्वज कवियों ने इस काव्यविधा को साधकर सिद्धियां प्राप्त की हैं और संसार को कालजयी दोहे दिये हैं. यही कारण है कि अब दोहे लिखना, और अच्छे दोहे लिखना खासा चुनौती भरा कार्य है. हालांकि बहुतेरे रचनाकार इस विधा में आजकल हाथ आज़मा रहे हैं, किंतु कुछ ही हैं जो इस छकानेवाली विधा से पार पा सके हैं. कहना होगा कि युवा रचनाकार जय चक्रवर्ती उनमें से एक हैं.

अपने समकालीनों में जय चक्रवर्ती यूं तो गीत और नवगीत विधा का चर्चित और सुपरिचित नाम है. किंतु उनके हाल ही में प्रकाशित दोहा संग्रह 'संदर्भों की आग' को पढ़कर लगा कि उन्होंने अपनी साधना से दोहा-विधा को साध लिया है. इन दोहों का 'टैक्सचर' बहुत बढ़िया है और 'लुक' बहुत प्यारा. दोहों में उन्होंने शब्दों को बहुत करीने से पिरोया है, जिससे भावों का सौंदर्य निखर-निखर गया है. अच्छे टुकड़ों के समावेश से कविताई का आनंद द्विगुणित हो जाता है. मात्राएं जोड़ने-बैठाने का जुगाड़ तो सब कर लेते हैं, असली कमाल तो बोलते टुकड़ों के इस्तेमाल में होता है. संग्रह में कई ऐसे टुकड़े ध्यान आकृष्ट करते हैं.

कुछ उदाहरण देखें :-

'जो भी आया पीर का, छोड़ गया इतिहास।
पल-भर मुझको भी कभी, पढ़ता कोई काश॥
पानी वाली हो गयीं, आंखें जब कंगाल।
जीवन-सारा बन गया, ख़ुद में एक सवाल॥'

कई मेल के दोहे यहां अपने-अपने रंगो-बू के साथ मौज़ूद हैं, किंतु संवेदना प्रधान दोहों की बात ही कुछ और है. संवेदना-प्रधान दोहे कहते हुए जय चक्रवर्ती बहुत भाते हैं. ऐसा करना शायद उन्हें भी बहुत भाता होगा. संबंधों को लेकर वे बहुत भावुक हो उठते हैं. उनकी अभिव्यक्तियां कई बार बहुत पावन लगती हैं. उनकी भावनामयता बहुत सुहावन लगती है. उनकी आकांक्षाएं 'सर्वमंगल मांगल्ये' की हैं. वे सबका भला चाहते हैं. किसी का दुख उनसे देखा नहीं जाता. वे निर्मल हृदय के विमल कवि हैं. कुछ दोहे दृष्टव्य है :-

'बूढ़े मां-बापू बंटे, यूं बेटों के बीच।
ज्यों शर्तें व्यापार की, दो सेठों के बीच॥
घर के भीतर घर बना, बना द्वार में द्वार।
अपना दुख किससे कहे, आंगन की दीवार॥
बस इतना कर दीजिए, हे दुनिया के भूप।
सबके हिस्से छांव हो, सबके हिस्से धूप॥'

इस संग्रह के दोहों में भावमयता के साथ-साथ आज का यथार्थ भी पूरी सजीवता के साथ अभिव्यक्त हुआ है. ये दोहे आधुनिकता बोध से पूरी तरह परिपूर्ण हैं. बदलती दुनिया के पैंतरों पर भी कवि की निग़ाह गयी है. बाज़ार और भूमंडलीकरण की गांव घर तक होती घुसपैठ को जय भाई पूरी सजग दृष्टि से देखते हैं :-

जादू जाने कौन-सा डाल गया बाज़ार।
आंखें, आंसू, आह सब बिकने को तैयार॥
दालानों तक आ गयी, मीनारों की भीड़।
सहमी गौरैया खड़ी, कहां बनाये नीड़॥

विकास के इस दौर में भी 'होरी' के हालात नहीं बदलने पर कवि का दुख इस दोहे से समझा जा सकता है-

युग बदले, बदले नहीं, होरी के हालात।
वही फूस की झोपड़ी, वही पूस की रात॥

कवि पूछता है- यह विकास किस काम का? यही पीड़ा कवि को भारतीय लोकतंत्र को 'तंत्रलोक' कहने पर मज़बूर करती है- *'तंत्रलोक' है अब यहां, लोकतंत्र मत बोल.'* जहां नेता और माफिया के सारे गुनाह माफ हैं, क्योंकि उनके पास सारे तालों की चाबियाँ हैं. जो 'हरिश्चंद्र' होने का रास्ता पकड़ते हैं, वे कौड़ी के तीन हो जाते हैं :-

'शकुनि-शिखंडी हो गये, शिखरों पर आसीन।
हरिश्चंद्र बनकर रहे, हम कौड़ी के तीन॥'

संग्रह बहुत अच्छा बन पड़ा है. बस कहीं-कहीं अ-यथार्थी बिंबों से भाव कुछ बेमेल और अर्थ अटपटा हो गया है. कुछ दोहे रस्म अदायगी के लिए भी लिख दिये गये प्रतीत होते हैं. किंतु जीत अंततः अच्छे दोहों की ही हुई है. इसलिए जय चक्रवर्ती की यह जय-यात्रा सफल मानी जायेगी.

✍ **'अकथा' (रमरेपुर), बेला रोड,**
संजय नगर, (पहड़िया), वाराणसी, (उ.प्र)

यह जो ज़िंदगी है

✍ डॉ. वरुण कुमार तिवारी

अकलुष आंखों में
अगणित उम्मीदों की चमक लिये
सुदूर देहात से
झुंड के झुंड
किशोर-जवान
ऊंचे ब्याज दर पर,
महाजन से कर्ज लेकर
चना चबना के सहारे
कई दिनों की रेल-यात्रा के बाद
फैल जाते हैं
लुधियाना, पटियाला
दिल्ली, चंडीगढ़,
सूरत, अमृतसर शहरों में
और उलीचते हैं
दोनों हाथों से
अपनी जवानी का पानी
हाड़-तोड़ कामों में.

घटिया खान-पान
नींद की जगह की किल्लत
शराब-सिगरेट की लत
ढोर-डंगर की तरह,
लस्त-पस्त जी-जीकर
रस निचोड़े गन्ने की तरह
अपना कंकाल जीन्स पैंट-
शर्ट में छिपाये
सूटकेस, घड़ी, ट्रांजिस्टर
के साथ
लौटते हैं घर
मन में झूठे अहं
और पर्स में थोड़ा सा धन
लेकर
कुछ महीने
गांव में बची-खुची
खुशी लेकर,

समीप के हाट-बाज़ार में
सिगरेट के धुएं के
छल्ले बनाकर
बेचकर घड़ी, ट्रांजिस्टर
फिर महाजन से कर्ज लेकर
पहुंचते हैं
अजगर संस्कृति में,
फिर उसी मुकाम पर
दो उदास आंखें लिये
लिख चुके होते हैं जिनमें
घर-गिरस्ती के
सारे-सपने
और अब
उन आंखों में
घूमते रहते हैं केवल
महाजन के कर्ज के फंदे !

स्टेट बैंक कॉलोनी, वीरपुर- ८५४३४० (बिहार)

समान धरातल पर

✍ डॉ. प्रभा मुजुमदार

राम घर चल,
बहुत थक गया है
थोड़ा आराम कर.
सुबह अख़बार पूरा नहीं पढ़ा,
टी. वी. इत्मीनान से नहीं देखा,
फ़ोन पर गप्पें नहीं मारीं,
बड़े दिनों से.
दोस्तों को घर नहीं बुलाया.
ऑफिस का बड़ा टेंशन होता है
थोड़ा सा चेंज चाहिए
नेट पर सर्फिंग कर.
एसएमएस पर जोक्स फार्वड कर.
गर्म चाय की चुस्कियां
पकोड़ों के साथ ले.
टी वी पर सुंदर बालाओं को देख,

पत्नी की झिक-झिक पर
ध्यान मत दे
बड़बड़ाती रहती है.
आंख मूंद पड़ा रह.
तू धरती पर सर्वश्रेष्ठ प्राणी है
इसका अनुभव कर.
रमा घर जा,
बच्चे बाट जोह रहे हैं.
घर पर चाय का इंतज़ार हो रहा है.
महरी काम पर नहीं आयी.
सब बिखरा बिखरा है.
बच्चों का होम वर्क अधूरा है
उसे पूरा कराना है.
जल्दी घर समेट.
बढ़िया नाश्ता बना,

जल्दी जल्दी हाथ चला
बहुत काम बाकी है.
आराम का नाम मत ले
ये हराम होता है,
अपनी बीमारी पर
छुट्टियां मत ले,
घर पर मेहमान आते हैं.
तीज-त्योहार,
बच्चों के इम्तिहान होते हैं
ऊंची आवाज़ मत कर,
किसी से अपेक्षा मत रख,
फुर्ती से काम समेट
सुबह जल्दी उठना है.

ए-३/८०३ अनमोल टॉवर्स, नारणपुरा, अहमदाबाद- ३८००६३

दोहे

✍ चंद्रसेन विराट

इतनी ही थी हैसियत, नहीं भक्ति में फेर।
सबके हाथों हैं कमल, मेरे हाथ कनेर॥
लोक ग्रहण कर ले अगर, सिर्फ़ पंक्तियां चार।
मेरा कवि कृत-कृत्य हो, मानूं मैं आभार॥
रहता है भीतर छिपा, प्रतिभा का अंगार।
करना होता आपको, अपना आविष्कार॥
सक्षम ही स्वीकार है, अक्षम अस्वीकार।
चुनता सदा सुयोग्य को, यह जग अति अनुदार॥
धुनकी हुई कपास के, फाहों सा हिमपात।
श्वेत स्वच्छ चादर बिछी, कांप रहा है गात॥
प्रश्नपत्र है ज़िंदगी, जस का तस स्वीकार्य।
कुछ भी वैकल्पिक नहीं, सबका सब अनिवार्य॥
देख न पाते भीतरी, स्वयं विकृति-विस्तार।
करते केवल साहसी, निज से साक्षात्कार।
बहुत यत्न से हो गया, तन का तो तादात्म्य।
मन न नियंत्रित हो सका, यह मन का माहात्म्य।
जीव जगत से ना पृथक, ब्रह्म नियामक शक्ति।
यही विशिष्टाद्वैत है, दर्शन की अभिव्यक्ति॥
नायक धीरोदात्त से, धीर-ललित अति प्रेय।
रूप, प्रणय, माधुर्य की, समरसता का श्रेय॥
उदयन वीणा छेड़ते, स्वर होते साकार।
वासवदत्ता ही बजी, बन वीणा का तार॥

**'समय', १२१ वैकुंठधाम कॉलोनी,
ओल्ड पलासिया, खतराना कोठी, इंदौर- ४५२०१३**

✍ प्रमोद भट्ट 'नीलांचल'

हाथों में है हथकड़ी, पांवों में ज़ंजीर।
आंधी में उड़ने लगी, जीवन की तस्वीर॥
लहरें लेकर, आ गयीं, मोती, मूंगे सीप।
चार घड़ी में भर गया, स्मृतियों का द्वीप॥
दो रोटी के फेर में, जीवन जाता बीत।
ये बेबस मजदूर क्या ? गायें तेरे गीत॥
रामदेव के योग ने, किया अनोखा काम।
रोगी चंगे हो गये, बिन कौड़ी बिन दाम॥
आंसू की बस्ती लिये, इक दरिया के तीर।
अपना रांझा ढूंढ़ती, फिरती है इक हीर॥
घर-घर, तांडव कर रहे, धनवानों के पूत।
महिला थाने में मिले, रोज़ नये ताबूत॥
मंडप तले दहेज की, ऐसी भड़की आग।
फिर समाज के सर गया, इक कलंक का दाग़॥
काजू, व्हिस्की से खुली, छुटकारे की राह।
ऑडिट, अफ़सर खा गये, बाबू की तनख़्वाह॥
पगले! आंसू पोंछ ले, उसका था ये खेल।
निर्धन और धनवान में, होता कब है मेल॥
देखे बैठा काल ये, खिड़की से सब खेल।
कितने तन की बस्तियां, चले रूह की रेल॥

गुलाब कॉलोनी, सागर (म. प्र.) ४७०००२

✍ जय चक्रवर्ती

युग बदला बदले नहीं, होरी के हालात।
वही फूस की झोपड़ी वही पूस की रात॥
होरी की सारी फ़सल चढ़ी ब्याज की भेंट।
भूख-प्यास का मूलधन, धनिया रही समेट॥
सड़क बनी, बिजली मिली, गांव हुआ खुशहाल।
कोयल सबसे पूछती, कहां हमारी डाल॥
आया मेरे गांव में, इस ढंग से बाज़ार।
आंखें, आंसू, आह सब, बिकने को तैयार॥
घर के भीतर घर बने, बने द्वार में द्वार।
अपना दुख किससे कहे, आंगन की दीवार॥
गौरैया रहने लगी, आये दिन बीमार।
नन्हे-नन्हें नीड़ हैं, बड़ी-बड़ी दीवार.
लिया शहर ने गांव का, कुछ इस ढंग से पक्ष।
निष्कासित सब हो गये, पिता सरीखे वृक्ष॥

**एम-१/१४९, जवाहर विहार,
रायबरेली- २२९०१० (उ.प्र.)**

ग़ज़लें

✍ साहिल

माहनाबी यूं ही नहीं मिलती,
लाजवाबी यूं ही नहीं मिलती।
ज़िंदगी को गंवाना होता है,
इन्किलाबी यूं ही नहीं मिलती।
वक़्त का साथ भी ज़रूरी है,
कामियाबी यूं ही नहीं मिलती।
खंजरों से भी खेलना होगा,
कि गुलाबी यूं ही नहीं मिलती।
इन अंधेरों में डूबते रहिए,
आफताबी यूं ही नहीं मिलती।
दौर है बंध मुट्ठी का 'साहिल',
बेहिसाबी यूं ही नहीं मिलती।

नीसा-३/१५, दयानंद नगर,
राजकोट- ३६०००२

✍सच्चिदानंद 'इंसान'

इन अंधेरों को रोशनी न कहो,
मौत को अपनी ज़िंदगी न कहो।
घर जलाते हैं, खून पीते हैं,
इन दरिंदों को आदमी न कहो।
जिस मुहब्बत में हो हवस शामिल,
उस मुहब्बत को आशिकी न कहो।
और बाक़ी हैं तीर तरकश में।
हर सितम को तुम आख़िरी न कहो।
दर्द हर रंग में है दर्द इंसान।
ग़म तो ग़म है उसे ख़ुशी न कहो।

सहारा मिशन स्कूल, मुंदीचक,
भागलपुर (बिहार) ८१२००२

✍डॉ. शंभुनाथ आचार्य

खंड-खंड सपनों सी ज़िंदगी,
चूर हुए दर्पण सी ज़िंदगी।
गर्वीले नागफनी कांटों में,
उलझे आंचल सी ये ज़िंदगी।
मंदिर से कोठे की दूरी तक,
आ पहुंची लावारिस ज़िंदगी।
पालकी कहांरों के हाथों ही,
ठगी छली दुलहिन सी जिंदगी।
प्रश्नों के अंबारों में उलझी,
उत्तर से शून्य बनी ज़िंदगी।
हाथों की रेखाएं पंडित से,
पढ़ बाती खंडित ये ज़िंदगी॥

५/३०,छक्कालाल स्ट्रीट,
फ़र्रुख़ाबाद (उ.प्र.) २०९६२५.

✍ सुरेंद्र वर्मा

वजूद आदमी का गर शाया नहीं होता,
कोई ज़मीन कोई आसमां नहीं होता।
आदमी तो होता है कद-काठ का पूरा,
वो बौना भी हो तो बौना नहीं होता।
कविता विराजती है पूरे पृष्ठ पर भाई,
वो हाशिया या कोई कोना नहीं होता।
आहिस्ता आहिस्ता ही पनपती है मुहब्बत,
यकायक जादू कोई टोना नहीं होता।
प्यार से, खुलूस से, मुहब्बत से मिलो भाई,
इन्सानों में कोई भी बेगाना नहीं होता।
पीतल, तांबा, लोहा अनेकों द्रव्य हैं दोस्त,
यह दुनिया है, हर कोई सोना नहीं होता।
जाना तो सभी को है वहीं जहां से आये,
खोना ही है इस लोक को पाना नहीं होता।

१० एचआईजी, १-सर्कुलर रोड,
इलाहाबाद -२११००१

परिशिष्ट

संस्कृति संरक्षण संस्था

*संस्था के उद्देश्य प्राप्ति की दिशा में समय-समय पर अनेक कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं. १७ अगस्त २००८ को सनातन धर्म विद्यालय (चेंबूर कैंप) में एक **'काव्य-सृजन'** प्रतियोगिता आयोजित की गयी जिसमें विभिन्न विद्यालयों के नवीं-ग्यारहवीं और जूनियर कॉलेज के विद्यार्थियों ने भाग लिया. काव्य-सृजन के लिए प्रतियोगिता प्रारंभ होने से मात्र आधा घंटा पूर्व ही प्रतियोगियों को आठ विषय बताये गये जिनमें से उन्हें कोई एक विषय चुनना था. यहां पर उन पांच कविताओं को प्रस्तुत किया जा रहा है जिन्हें ५००-५०० रु. के नक़द पुरस्कार मिले. अन्य पुरस्कृत कविताएं अगले अंक में प्रकाशित की जायेंगी.*

आज़ादी

✍ **डिंपल कॉन्सोटिया** (बारहवीं)

आज मनाता आज़ादी की खुशियां यह संसार।
वीरों ने प्राण गंवा करके दिया हमें उपहार॥
एक समय था जब भारत तिल-तिल कर हर पल तड़पा किया।
स्वतंत्र नहीं थी यह चिड़िया गोरों ने पिंजरे में इसे बंद किया॥
नेहरू, गांधीजी, टैगोर, तिलक ने संघर्ष अनंत किया।
तब स्वतंत्र हुई यह धरती जिस पर शहीदों ने अपना दम तोड़ दिया॥
होती क्या आज़ादी इसका मोल बड़ा अनमोल।
उन जैसे शहीदों का दुनिया में होगा न कोई तोल॥
कण-कण गाता इसकी गाथा और सुनती दुनिया सारी॥5॥
धरती स्वतंत्र, आकाश स्वतंत्र और है स्वतंत्र यह देश।
कई बोलियां, अलग पहनावों का दिखता है इसमें विभेद॥
मिलकर हम रहने पर क्या आज़ादी का महत्व जाना ?
स्वतंत्र हो गये याद रहे इसे दलालों के हाथ न गंवाना॥
फिर बनके सोने की चिड़िया झूमे यह जग संसार॥
तेरे हाथ में आज़ादी की डोर इसे प्यार से तू संभालना।
इस देश से वफ़ा करना है कर्तव्य तेरा यह जानना॥
चाहे ग़रीबी आये पर देशद्रोही न बनना तुम।
बंद पिंजरे में रहने से अच्छा भूखे ही मर जायें हम॥
यह मिट्टी तेरी माता है यह याद रखना तू मंत्र।
वफ़ा देश से सदा करे तो ही हो पायेगा पूर्ण स्वतंत्र॥

✍ **चाल नं. ३४, इंदिरा नगर-२,**
ठक्कर बापा कॉलोनी, चेंबूर, मुंबई- ४०००७१

भारत माता

फेनिल कौशिक ठक्कर (बारहवीं)

तुझे देखकर मिलती है राहत,
तेरी गोदी तजकर चलने की है चाहत.
वर्तमान भारत के तो सभी गाते हैं गुणगान,
परंतु क्या सच में कहलायेगी तू बलवान ?
अभिनव बिंद्रा ने दिखाया जो जोश,
लगता है कि जैसे युवाओं को आ गया है होश.
युवाओं के आधार पर तैयार हो तेरी नींव,
हिला न सके इसे इस धरती का एक भी जीव.
तंत्रविज्ञान के क्षेत्र में होगा ऐसा कमाल,
जिसके दम पर मचायेंगे हम विश्व में धमाल.
ऊंची-ऊंची इमारतें बढ़ायेंगी हमारी शान,
पाश्चात्य राष्ट्रों को भी देना होगा हमें सम्मान.
भ्रष्टाचार, ग़रीबी, बेरोज़गारी का करेंगे हम नाश,
गांधीगिरी के जोर पर करेंगे हम आतंकवाद का सर्वनाश.
समाज नवनिर्माण से हम दिलायेंगे तुझे मान,
और सभी एकता के सूत्र में बंधकर कहेंगे हमारा भारत महान.
तुझे बलशाली बनाने का देखा था जो सपना,
जल्द ही बनायेंगे उसे अपना,
दिन-रात हूं मैं यही सोचता जाता,
कैसे बनाऊं तुझे आदर्श भारत माता।

✍ **ब-२२, शास्त्री निकेतन,**
चेंबूर नाका, मुंबई-४०००७१

महंगाई

✍ **मनीष कुमार सा** (नौवीं)

बाप रे बाप कैसा है यह श्राप,
जैसा भी किया तुमने है काम
अब भुगतो इसका अनजाम।
चढ़ी जा रही महंगाई आज सातवें आसमान पर
पर किसको मालूम कितना है दाम
आलू-कांदे हो रहे बदनाम।
आज मनुष्य की हालत देखो।
कमर तोड़कर काम करते देखो।
ख़ून-पसीना एक हो जाता।
पर पेट भरने योग्य पैसा न हो पाता।
दवाखाने की बात को छोड़ो।
बढ़ती महंगाई को तुम देखो।

बच्चों की शिक्षा में रुकावट,
रोजमर्रा की चीज़ें मिलने में बाधा,
बच्चों की इच्छाओं में रुकावट,
नेताओं के भाषण में नहीं दाम,
भूखे लोगों को मरते देखते हम।
आज घड़ी-पुस्तक है महंगी,
इन सब पर टैक्स लगाती गवर्नमेंट
आज भारत में ग़रीबी का है बुरा हाल,
जी सकते हैं सिर्फ़ मालामाल।
सब कुछ आज है डीजल-पेट्रोल पर निर्भर,
बढ़ते दामों को देखो दिन भर।
महंगाई है ऐसा श्राप
जिस पर निर्भर हो आप।
मेरी बात को यूं मत टालो,
भगवान के लिए महंगाई से पीछा छुड़वालो.

एम.एस.बिल. नं २/५२,
चेंबूर कॉलोनी, मुंबई-४०००७४

भारत माता

मीनाक्षी छीपा (बारहवीं)

आराम है हराम, आराम है हराम
आओ एक हो जायें
मिलकर हम स्वर्ग बनायें
भारत मां की आन के लिए
दे दें हम कुर्बानी।
आराम है हराम, आराम है हराम।
देखो देश में अब तक
कितने काम अधूरे
मिलकर हाथ बंटाओ
तभी ये होंगे पूरे,
आराम है हराम, आराम है हराम।
भारत मां के वीर लालों
कर दो ख़ुशहाल भारत मां,
करना है हम सबको मिलकर काम
भारत मां का ऊंचा नाम
आराम है हराम, आराम है हराम।
वीर शहीदों तुम्हें प्रणाम
भारत मां को किया खुशहाल
डंटे रहे भारत भूमि पर,
किया देश का नाम
आराम है हराम, आराम है हराम
आओ हिंदू, आओ मुस्लिम
आओ सिक़्ख, ईसाई
आंख गड़ाकर देखें मां को
उन्हें सबक सिखायें,
आराम है हराम, आराम है हराम ।
आओ मुंबई, आओ दिल्ली
आओ राजस्थान।
हम सब मिलकर हो जायें सावधान
आराम है हराम आराम है हराम।
भारत मां है हमको प्यारी
सुन लो ए तुम पाकिस्तानी
हमसे मत करना गुस्ताखी
हम हैं देश के वीर लाल
आराम है हराम आराम है हराम।
नहीं आराम करना हमें है काम ।
भारत मां का नाम करना है।
जग में दो हैं सुंदर नाम
चाहे कहो तुम हिदुस्तान,
चाहे कहो तुम भारत महान।
आराम है हराम आराम है हराम।
सीमा पर यदि युद्ध छिड़ा तो
हम भी लड़ने जायेंगे,
भारत मां को स्वरक्त पिलाकर
अपना फर्ज निभायेंगे।
दुश्मन को मार भगायेंगे।
आराम है हराम आराम है हराम।

प्लॉट नं. १६/टी/३, बैंगनवाड़ी,
गोवंडी, मुंबई- ४०००४३

राष्ट्रभाषा हिंदी

पिंकी बोकोलिया (बारहवीं)

जब देश में था ब्रिटिशों का राज
तब देश में था अंग्रेजी का काज,
किंतु अब हैं हम आज़ाद
तो क्यों नहीं अब हिंदी का राज?
इस हिंदी ने दी है आज़ादी
क्यों करते हो इसकी बरबादी,
न शर्माओ इसे बोलने में
सादी, सरल, विनम्र है हमारी हिंदी।

जानकर भी हो अनजान
हिंदी को ही बनाओ अपनी पहचान,
हो इस राष्ट्र के निवासी
तो कृपा कर इसका बढ़ाओ मान।
लुप्त होती जा रही है,
गुम होती जा रही है, है हमने इसे डराया,
सामने इसके पताका अंग्रेजी का फहराया
क्यों न मानी इसकी माया?
बच्चों को भी शिक्षा नहीं इस हिंदी में,
क्यों लहराती इस पर काली छाया?
हिंदी खो न जाये कहीं, डरते हैं हम
इसीलिए तो हिंदी दिवस १४ सितंबर को मनाते हम,
किसी कारण सम्मान नहीं है इसका आज
अपने ही राष्ट्र में लुप्त है हिंदी
राष्ट्र है हमारा हिंदी फिर भी अंग्रेजी में ही होते सारे राज-काज
हे भारतवासियों हिंदी को बचाओ,
१४ सितंबर और हिंदी को न भुलाओ
इसी हिंदी ने दिये हैं प्राण, न लो तुम इसकी जान
अपनी हिंदी लहराती रहे - तिरंगे सी,
शान इसकी बनी रहे - हिंदुस्तान सी
शान से बोलो सभी हिंदी,
हिंदी, हिंदी और हिंदी !

इंदिरा नगर भाग-२,
ठक्कर बाप्पा कॉलोनी,मुंबई- ४०००७१

जीवन प्रभात विमला पुस्तकालय

मुंबई : वरिष्ठ पत्रकार एवं 'जीवन प्रभात' के संपादक सत्यनारायण मिश्र द्वारा स्थापित 'मातुश्री दुर्गाबाई महेश्वरदत्त मिश्र सेवा संस्थान' द्वारा यह सार्वजनिक पुस्तकालय प्रारंभ किया गया है. इसमें नवीनतम पुस्तकों के साथ-साथ प्रमुख लेखकों की संपूर्ण पुस्तकों की विशेष व्यवस्था की जा रही है. स्थानीय पुस्तक प्रेमी इसका लाभ उठा सकते हैं. लेखक, प्रकाशक, संस्थाएं एवं सार्वजनिक प्रतिष्ठान प्रचार-प्रसार के लिए अपना साहित्य तथा पत्र-पत्रिकाएं भेज सकते हैं. ग्रंथपाल, जीवन प्रभात विमला पुस्तकालय, ए ४/१, कृपा नगर इरला ब्रिज, मुंबई ४०००५६, फोन : २६७१६५८७

प्राप्ति स्वीकार

कोहरे से लिपे चेहरे (कहानी संग्रह) : **सूर्यकांत नागर**, किताबघर प्रकाशन, ४८५५-५६/२४, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११० ००२. मू. १३० रु.

तुलसाबाई का नोहरा (क. सं.) : **कमलेश शर्मा**, रचना प्रकाशन, १५, गोयागेट सोसायटी, शक्ति अपार्टमेंट, प्रतापनगर, वडोदरा, मू. १००रु.

पहली उड़ान (ल. संग्रह) : **देवेंद्र गो.होलकर**, दिशा प्रकाशन, १३८/१६ त्रिनगर, दिल्ली-११० ०३५. मू.१३०रु.

ऐसे थे तुम (ल. संग्रह) : **कमलेश भारतीय**, अमन प्रकाशन, १०४१, अर्बन एस्टेट-२, हिसार-१२५ ००५. मू. ५०रु.

रेत का सफ़र (ल. संग्रह) : **राजेंद्र मोहन त्रिवेदी 'बंधु'**, पुष्करणा ट्रेडर्स, महेंद्रू, पटना-८०० ००६. मू.७५ रु.

सफ़रनामा : मुंबई : सुभाष संपत, हिंदुस्तानी प्रचार सभा, ७, नेताजी सुभाष रोड, मुंबई - ४०० ००२. मू.१८०रु.

माटी की सौगंध (नाट्य संग्रह) : **राजेंद्र बहादुर सिंह 'राजन'**, एकादश प्रकाशन, २४१, इंदिरा नगर, रायबरेली -२२९४०१. मू.५०रु.

हर बार यह होता है (का .सं.) : **सलीम अख़्तर**, वैभव प्रकाशन, अमीनपारा चौक, पुरानी बस्ती, रायपुर-४९२००१. मू.१००रु.

सिमट रही संध्या की लाली (का. सं.) : **डॉ.तारा सिंह**, मीनाक्षी प्रकाशन, शकरपुर, नयी दिल्ली -११० ०९२. मू. ६०रु.

संवेदना के स्वर (का. सं.) : **अशोक विश्नोई** , सागर तरंग प्रकाशन, डी-१२ अवंतिका कॉलनी, मुरादाबाद -२४४००१. मू. १५०रु.

संवेदना (का. सं.) : **अरुण कुमार भट्ट**, ४४/२६२, भारी पाना संयंत्र कॉलोनी, रावतभाटा-३२३३०७. मू.७५ रु.

काव्यार्थ अमृत (का. सं.) : **अमर लाल सोनी 'अमर'**,नर्मदा प्रकाशन, बैरन बाज़ार, रायपुर-४९२००१. मू.१००रु.

चिरंतन (का. सं.) : **कुलवंत सिंह**, रचना साहित्य प्रकाशन, वसंत वाड़ी, कालबादेवी रोड, मुंबई -४०० ००२. मू.५० रु.

सूनेपन से संघर्ष (का. सं.) : **सरिता शर्मा**, अमर भारती साहित्य संस्कृति संस्थान, १०८४, विवेकानंद नगर, गाज़ियाबाद-२०१ ००२. मू.१००रु.

सागर में रेगिस्तान (ग़.सं.) : **अक्षय गोजा**, मीनाक्षी प्रकाशन, शकरपुर, नयी दिल्ली-११० ०९२. मू.१००रु.

दुनिया-भर के ग़म थे (ग़.सं.) : **श्याम सखा 'श्याम'**, प्रयास ट्रस्ट, १२ विकास नगर, रोहतक-१२४ ००१. मू. १००रु.